वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५५ अंक २ फरवरी २०१७

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०१७

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५५
अंक २

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : युगबोध डिजिटल प्रिंट्स, समता कॉलोनी, रायपुर - ४९२००१ (छ.ग.) (फोन : ४२००९२४/५)

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१	श्रीसरस्वती पूजा
१०	स्वामी अद्भुतानन्द
२४	महाशिवरात्रि
२८	श्रीरामकृष्ण परमहंस

आवश्यक सूचना

रामकृष्ण मिशन विवेकान्द आश्रम में २ फरवरी, २०१७ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। ३ फरवरी, २०१७ से ११ फरवरी, २०१७ तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' के रामचरित मानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण देव का यह मन्दिर रामकृष्ण आश्रम, राजकोट का है ।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
एक सेवक	३०००/-
श्री आर.पी. सुखीजा, रायपुर (छ.ग.)	२०००/-

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
१०४.	श्री प्रभुलाल बी. चौहान, साकोली, भंडारा (महा.)	शास. कन्या महाविद्यालय दंतेवाड़ा (छ.ग.)
१०५.	श्री गेंदलाल यादव, धमतरी (छ.ग.)	भानुप्रताप देव, शास. पी.जी. महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.)
१०६.	श्री गेंदलाल यादव, धमतरी (छ.ग.)	शास. महाविद्यालय बकावन्ड, जिला - बस्तर (छ.ग.)
१०७.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. चन्दूलाल चन्द्राकर महाविद्यालय,धमधा, दुर्ग (छ.ग.)
१०८.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. महाविद्यालय, खेरथा, डोंडी लोहारा (छ.ग.)
१०९.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. जे.एल.एन. पी.जी. महाविद्यालय, बेमेतरा (छ.ग.)
११०.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. शिवनाथ विज्ञान महाविद्यालय, राजनांदगाँव (छ.ग.)
१११.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. महाविद्यालय, बोड़ला, जिला - कर्वधा (छ.ग.)
११२.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. इंदरु केवट कन्या महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.)
११३.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. महाविद्यालय, कोन्टा, जिला - सुकमा (छ.ग.)
११४.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शास. इन्द्रावती महाविद्यालय, जिला बीजापुर (छ.ग.)
११५.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	शा. जमुना प्रसाद वर्मा, पी.जी. कला/वा. महा. बिलासपुर
११६.	श्री रामगोपाल मोहता, मालाबार हिल्स, मुंबई	वी. अवंतिबाई लोधी शा.महाविद्यालय, पथरिया, मुंगेली छ.ग.
११७.	एक सेवक	शास. ई. राघवेन्द्र राव.पी.जी. विज्ञान महाविद्यालय, बिलासपुर
११८.	एक सेवक	राजीव गाँधी शा. कला/वा. महाविद्यालय, लोरमी, मुंगेली
११९.	एक सेवक	शास. जाजल्यदेव नवीन कन्या महाविद्यालय, जांजगीर (छ.ग.)
१२०.	श्री आर.पी. सुखीजा, जलविहार, रायपुर	शास. पी.जी. किरोड़ीमल महाविद्यालय, रायगढ़ (छ.ग.)
१२१.	श्री तापस डे, मुम्बई (महा.)	इंदिरा गांधी शास. महाविद्यालय, पण्डरिया, कवर्धा (छ.ग.)
१२२.	डॉ. प्रभाकर शर्मा, इंदिरा नगर, उज्जैन (म.प्र.)	भोज शोध संस्थान विक्रम ज्ञान मंदिर, जिला - धार (म.प्र.)
१२३.	डॉ. प्रभाकर शर्मा, इंदिरा नगर, उज्जैन (म.प्र.)	शास. जिला ग्रंथालय, देवास रोड, उज्जैन (म.प्र.)
१२४.	डॉ. प्रभाकर शर्मा, इंदिरा नगर, उज्जैन (म.प्र.)	कस्तूरबा गाँधी नेशनल ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
१२५.	... ...	शा. पं. श्यामाचरण शुक्ल महाविद्यालय, धरसीवा, रायपुर

श्रीरामकृष्ण वन्दना

गुणातीत-चित्तं परज्ञानवित्तं
महायोग-साक्षात्कृत-ब्रह्मतत्त्वम्।
महिम्ना-द्युलोकप्रसर्पन्महत्वं
भजे रामकृष्णं महाशुद्धसत्त्वम्।।

– जिनका चित्त गुणातीत अवस्था में प्रतिष्ठित है। सर्वश्रेष्ठ भगवद्ज्ञान ही जिनकी सम्पत्ति है, जिन्होंने महायोग के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, देवलोक तक जिनकी महिमा व्याप्त है, इस प्रकार के परमशुद्ध सत्त्वरूप श्रीरामकृष्ण का मैं भजन करता हूँ।

वरेण्यं शरण्यं कृपाप्रावृषेण्यं
जगन्मातृ-हस्ताम्बुजस्पर्श-धन्यम्।
महामोहनाशाभिलाषैः प्रपन्नं
भजे रामकृष्णं समाधिप्रसन्नम्।।

– जो वरेण्य हैं और शरण देने वाले हैं, जो कृपा बरसाने वाले हैं और जगन्माता के कर-कमलों से धन्य हैं, जो महामोह का नाश करने की अभिलाषा से युक्त हैं एवं समाधि में सदा प्रसन्न रहते हैं, उन्हीं श्रीरामकृष्ण परमहंस का मैं भजन करता हूँ।

(श्रीविधुभूषणभट्टाचार्यसप्ततीर्थप्रणीता)

पुरखों की थाती

शास्त्राण्यधित्यपि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ।।५३५।।

– शास्त्र पढ़नेवालों में भी मूर्ख पाये जाते हैं, वस्तुतः विद्वान तो वही है जो शास्त्र के अनुसार आचरण करता है । क्योंकि दवा चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, परन्तु नाम लेने मात्र से ही वह नीरोग नहीं कर देती ।

शोकस्थानि सहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढामाविशन्ति न पण्डितम् ।।५३६।।

– मूर्ख व्यक्ति को प्रतिदिन हजारों शोक और सैकड़ों भय के कारण दीख पड़ते हैं, परन्तु ज्ञानियों के साथ ऐसा नहीं होता ।

शीत-वातातप-क्लेशान् सहन्ते यान् पराश्रिताः ।
तदंशेनापि मेधावी तपस्तप्त्वा सुखी भवेत् ।५३७।

– पराधीन लोग सर्दी, गर्मी तथा हवा से जो कष्ट सहते हैं, उसके अंशमात्र श्रम से बुद्धिमान व्यक्ति सुखी हो सकता है ।

श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां
स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः ।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा
नाशाभिभङ्गाद्विमुखाः प्रयान्ति ।।५३८।।

– संसार के मनुष्यों में एकमात्र वही व्यक्ति प्रशंसनीय है, वही उत्तम पुरुष है और वही सज्जन है, जिसके पास से याचक अथवा शरणार्थी निराश होकर वापस नहीं लौटते ।

श्रीरामकृष्ण-सुप्रभातम्

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर

जिसके जीवन से निःसृत है दिव्य ज्ञानरत्नाकर,
नाश सकल अज्ञान जगत का जो करते अति सत्वर,
कमलनयन करुणा से पूरित सत्यनिष्ठ जीवन निष्काम,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।१।

संसारताप से तप्त हृदय को जो शीतलता देता,
जीवन के इस गहन गरल को अमृतमय कर देता,
जो जीवन में मधु बरसाता दुःखक्लेश करता अवसान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।२।

ईश्वरभक्ति में जीवन सारा करके पूर्ण समर्पण,
भक्तिसुधा का वितरण करके धन्य किया सब जनगण,
परम शान्ति जीवन में देता जीवन करता पूर्णकाम,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।३।

ईशतत्त्व की दिव्य प्रभा से आलोकित जड़ चेतन,
ईशतत्त्व ही परम प्रमुख है ऐसा नित है चिन्तन,
ईश्वरदर्शन लक्ष्य सभी का करता जो उद्घोष महान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।४।

गौरव की महिमा से मंडित, दिव्य ज्ञान से नित्य प्रकाशित,
परम सत्य में अविचल स्थित, ब्रह्मतत्त्व में चित्त समाहित,
मातृशक्ति में परम भक्ति का देता जो सन्देश महान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।५।

ज्ञान-भक्ति-वैराग्यविमलधन तव जीवन में शोभित,
काम-क्रोध-मद-मोहविसर्जित पुण्यचरित अति सुरभित,
परमहंस आनन्दमूर्ति जो सब भूतों के हैं सुखधाम्,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।६।

जिसके हृदयकमल में प्रतिक्षण माँ काली है बसती,
जिसका जीवन हरपल हरक्षण संचालित वह करती,
यंत्ररूप वह माँ काली का काली यंत्री है अविराम,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।७।

प्रकृति विकृतिशून्य चरित तव चिदानन्दमय जीवन,
त्रिगुणरहित भवतापविसर्जित नित नीरक्षीर आवर्तन,
सुरनरमुनि सब गायन करते विश्वसुपूजित जिसका नाम
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।८।

ज्ञानसुधा की दिव्य ज्योति से जो जीवनतम हरता,
निर्गुण होकर भी जो जग में सगुण रूप है धरता,
जो करता खंडन भवबंधन जिसका जग करता गुणगान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।९।

दिव्य कान्ति से परिवेष्टित है भव्य तुम्हारा जीवन,
अमृतरस से सराबोर है विमल हृदय तव चिन्तन,
जो जीवन का अर्थ बताता देता नित जो परम ज्ञान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।१०।

सकलधर्मसंस्थापनतत्पर, सभी धर्म हैं एक समान,
जितने मत हैं उतने पथ हैं यह वाणी है वेद सामान,
कर उच्चारित दीर्घ स्वरों में यही सत्य अमृतमय जान
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।११।

हुआ धर्मसंस्थापन जिनसे संशय का सम्पूर्ण विनाश,
भक्तजनों के हृदयकमल में उपजी गहन भक्ति की आस,
वेदों के अमृत को जिसने सरल शब्द में किया बखान,
ऐसे मेरे रामकृष्ण को सुप्रभात में नित्य प्रणाम।१२।

सुप्रभात यह रामकृष्ण का भक्त जो करते प्रतिदिन गान,
रामकृष्ण की विमलकृपा पा जीवन होता धन्य महान।

मुक्तिदाता भगवान शिव और शिवमय श्रीरामकृष्ण

भारतीय संस्कृति में फाल्गुन मास की महाशिवरात्रि का बड़ा महत्त्व है। इसी रात्रि को भगवान शंकर ने सती के शरीर-त्याग से अनुतप्त होकर दक्षप्रजापति के मान-मर्दन हेतु अपना प्रलयंकारी रूप प्रकट किया था, सती के शरीर को लेकर महातांडव नृत्य किया था –

यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः
स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्व-
जानुच्चाट्टहास-स्तनयित्नुभिन्नदिक्।।

– प्रलयकाल में वे अपने जटाजूट बिखराकर, भुजाओं को फैलाकर तांडव नृत्य करते हैं। उनके त्रिशूल के फलों से दिग्गज बिंध जाते हैं और उनके भयंकर अट्टहास से दिशायें विदीर्ण हो जाती हैं।

उनका यह भयंकर विनाशकारी रूप भी लोकमंगलकारी है। इस महाशिवरात्रि को भगवान शिव ने देवताओं को जगदुद्धार हेतु महामृत्युंजय मन्त्र प्रदान किया था। इसलिये भक्तों के लिये यह महारात्रि जन्म-मरणचक्र से उद्धार हेतु विशेष साधना को इंगित करती है। जैसे भगवान शिव ने शक्तिरूपिणी सती के अपमान करनेवाले अहंकारी दक्ष के प्रति रौद्र रूप धारण किया, वैसे ही वे हमारे अन्त:स्थ अनन्त शक्तिमय परमात्मा से विच्छेद करनेवाले मदादि शत्रुओं का विनाश कर हमें उनसे एकाकार कर देते हैं।

आदिदेव जटाजूटधारी, दिगम्बर, कैलासपति, भस्मविभूषित श्मशानवासी, नागमालाधारी, देव-दानव सर्वपूज्य औढरदानी भगवान शिव की महिमा विलक्षण है। उनके विभिन्न स्वरूप का चिन्तन-मनन मानवों के लिए शिवकर है।

मंगलकारी शिव – भगवान शिव अपने अद्भुत गुणों के कारण जन-जन के पूज्य और आराध्य हैं। दीन-दुखी, यति, गृहस्थ, आबालवृद्धवनिता सभी शिवोपासना करते हैं। ये ऐसे बावरे हैं कि विधि-विधान के अतीत जाकर भक्त का कल्याण करते हैं। उनकी पूजा भी कैसी ! बड़ी विलक्षण पूजा है ! भांग, धतूर, बेलपत्ता चढ़ाने से ही प्रसन्न हो जाते हैं। उसी में सन्तुष्ट रहते हैं हमारे शिवशंकर ! स्वयं दिगम्बर हैं, लेकिन भक्तों को भुक्ति-मुक्ति सब सुख प्रदान करते हैं। स्वयं श्मशानवासी हैं, किन्तु अपने आराधकों को अट्टालिका दे देते हैं। जब संकट आता है, तो स्वयं विष-पान कर अपने शरणागतों की रक्षा करते हैं। एक ओर यतियों के आदर्श हैं महात्यागी शिव, तो दूसरी ओर गृहस्थों के आदर्श हैं कि कैसे परिवार में प्रकृतिविरुद्ध लोगों के साथ सामंजस्य बनाकर रहा जाय। इन सबके अतीत वे विरागी हैं और समाधिस्थ रहते हैं। इन अद्भुत गुणों के बाद भूतभावन शिव नामानुरूप सदा-सर्वदा जगत का मंगल करते रहते हैं। इनकी प्रत्येक क्रिया मंगलमय है, शिवमय है।

बावरे शिव – मुक्ति तो उनकी दासी है। महाकाल हैं, तो उनके भक्तों से काल भी डरता है। किसी ने यहाँ तक कहा कि 'गाल के बजाये त्रिलोक देई देत हैं' – पूजा के समय गाल बजाने पर तो त्रिलोक का राज्य देते हैं। ऐसे आढरदानी हैं कि ब्रह्माजी माँ पार्वतीजी को व्यंग्य-उलाहना देते हैं –

बावरो रावरो नाथ नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी।।...
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन कौ नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी।।वि.प.५

– हे भवानी ! आपके पति शिवजी बड़े पागल हैं। जिन्होंने किसी को कभी दान नहीं दिया, उन्हें कुछ पाने का कोई अधिकार नहीं, ऐसे लोगों को भी वे दे देते हैं, जिससे वेद की मर्यादा टूटती है। जिनके ललाट पर मैंने सुख का नाम -निशान नहीं लिखा, आपके पति के पागलपन के कारण उन कंगालों के लिये स्वर्ग सजाते-सजाते मेरे नाक में दम आ गया है इत्यादि। ऐसा है शिव का बावरापन ! पागलपन में भी लोक-कल्याण।

अद्भुत वरदायक निराले शिव – सुरासुर-अर्चित वन्दित शिव की यह विलक्षणता ही है कि जहाँ देववरदायी हैं, वहीं असुरवरदायक भी हैं, दैत्येश्वर रावण को भी वरप्रदान कर उसका कल्याण करते हैं। भस्मासुर को भी अद्भुत वरदान देकर उसके भय से स्वयं भागते-रहते हैं। हैं तो निराले ही !

परम दयालु भगवान शिव – दक्ष के इतने बड़े अपराध पर भी शंकरजी ने अपनी अपार दयादृष्टि से उन्हें क्षमा कर दिया और उनके यज्ञ को पूर्ण किया। भगवान शिव की दया का एक बड़ा ही मार्मिक दृष्टान्त है, जिसका संक्षेप में यहाँ उल्लेख करता हूँ।

काकभुशुंडिजी के पूर्व जन्म के गुरुजी अपने शिष्य के अपराध-क्षमा करने हेतु भगवान शिव से याचना करते हैं –

न यावद उमानाथ पादारविन्दं।
भजंतीह लोके परे वा नराणाम्।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं।
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम्।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां।
नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं।।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो।।

– 'हे प्रभो ! जब तक मानव पार्वतीपति के चरणकमलों को नहीं भजते, तब तक उन्हें न तो इहलोक और परलोक में शान्ति मिलती है, न ही उनके तापों का नाश होता है। हे शम्भो ! मैं योग-जप-पूजा नहीं जानता। मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो ! वृद्धावस्था और जन्म-मृत्यु दुखानल से तप्त हमारी रक्षा कीजिये। हे शम्भो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' इस आराधना से दयालु शिव प्रसन्न हो जाते हैं और काकभुशुंडिजी को सुगति प्रदान कर उनके मंगल हेतु आशीष देते हैं।

ललित निबन्धकार स्वर्गीय डॉ. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं – "शिव की आराधना का अर्थ है, तप और ध्यान की आराधना। सदैव संचरणशील भूतभावन की आराधना। मृत्युंजय विषपायी श्मशानवासी योगीश्वर की आराधना, अर्धांगिनी पर सब घर का भार छोड़कर निश्चिन्त घरबारी की आराधना, घर में कलह हो, कुछ हो, चुपचाप विहँसते रहते भोले बाबा की आराधना, प्रत्येक कला की शिक्षा देनेवाले परम गुण की आराधना, 'बावरे नाह' बावले मालिक की आराधना, जिसके दरवाजे पर चले जाइये, आपको सब कुछ मिल जायेगा।" भगवान शिव का ऐसा लोकमंगलकारी स्वरूप है।

शिवभावापन्न श्रीरामकृष्ण – युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण का जीवन भी बाल्यकाल से ही शिवभावापन्न है। वे बचपन से ही अपने कुलदेवता और अन्य देव-देवियों की महिमा के बारे में अपने माता-पिता से सुनते थे। देव-देवियों के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा-भक्ति थी। यज्ञोपवीत के बाद वे पूजा के अधिकारी होकर सन्ध्या-वन्दन के बाद प्रतिदिन उन देव-देवियों की पूजा तथा ध्यान करने थे। वे श्रीरामेश्वर शिव तथा शीतला माता की भी पूजा करते थे, जिससे उन्हें भाव-समाधि तथा दिव्य दर्शन होते थे।

शिवरात्रि में शिवजी के अभिनय में भाव-समाधि

श्रीरामकृष्ण को बचपन में शिव के अभिनय से भावावेश हुआ था, इसका वर्णन श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग में मिलता है – "एकबार शिवरात्रि-व्रत के उपलक्ष्य में सीतानाथ पाइन महोदय के घर पर नाटक का आयोजन हुआ। गाँव के समीप की ही एक मण्डली द्वारा शिव-महिमा से सम्बन्धित अभिनय की व्यवस्था की गई। एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने के बाद अभिनय प्रारम्भ होने को था। सायंकाल यह समाचार मिला कि उस मंडली में जो बालक शिवजी बनता था, वह अकस्मात बीमार हो गया है। बहुत खोजने पर भी शिवजी बनने योग्य कोई नहीं मिल रहा है। अत: निराश होकर मंडली के अधिकारियों ने उस रात्रि नाटक बन्द करने की प्रार्थना की है। अब क्या किया जाय? ... निश्चय हुआ कि अल्पायु होने पर भी गदाई (श्रीरामकृष्ण) को शिवजी के अनेक गाने कण्ठस्थ हैं तथा उस भूमिका में वह सुन्दर दिखेगा। अत: उसे ही कहा जाय। ... गदाई से कहा गया। सबके आग्रह को देखकर वह उस कार्य के लिये सहमत हो गया।

"...शिवजी की भूमिका में अवतीर्ण होने का समाचार पाकर गयाविष्णु अपने साथियों सहित उनका तदनुरूप शृंगार करने लगे। श्रीरामकृष्णदेव शिवजी की वेश-भूषा धारण कर शृंगार-कक्ष में बैठकर शिवजी का चिन्तन कर रहे थे, तभी उन्हें रंगमंच पर उपस्थित होने के लिये बुलाया गया। उनका एक मित्र उन्हें रंगमंच पर ले जाने के लिये आया। मित्र के बुलाने पर वे उठे और किसी ओर ध्यान न देते हुये अन्तर्मुखी हो धीरे-धीरे मंच पर आकर खड़े हो गये। उनके जटाजूट-समन्वित, विभूतिमण्डित वेश, धीर-स्थिर पादक्षेप तथा मंच पर पहुँच कर उनकी अचल अवस्थिति, विशेषकर अपार्थिव अन्तर्मुखी निर्निमेष दृष्टि तथा अधर पर मन्द हास्य देखकर सभी लोग आनन्द और विस्मय से मुग्ध हो गाँवों की प्रथानुसार सहसा उच्च शब्द से हरिनाम करने लगे एवं रमणियों में से किसी किसी ने मुख से मंगलसूचक शब्दोच्चारण तथा शंखनाद भी किया। सबको शान्त करने के लिये मण्डली के अधिकारी शिव-स्तुति करने लगे।

(क्रमशः)

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(भगिनी निवेदिता को लिखे स्वामीजी के पत्र)

यही सत्य है। हम एक जाल में फँस गये हैं; और जितनी जल्दी इसमें से बाहर निकल जायँ, उतना ही अच्छा होगा। मैंने सत्य का दर्शन कर लिया है – अब यह शरीर ज्वार-भाटे के समान बहता रहे, कोई परवाह नहीं!

मैंने एक विद्या-व्यसनी का जीवन बिताने हेतु, एकान्त में रहकर शान्तिपूर्वक अध्ययन में डूबे रहने के लिए जन्म लिया था, परन्तु जगदम्बा का कुछ दूसरा ही विधान था – तथापि वह प्रवृत्ति अब भी विद्यमान है।

(अल्मोड़ा, ३ जून, १८९७)

जैसे मैं प्रशिक्षित हुआ था, ठीक वैसे ही – वृक्षतल का आश्रय लेकर और थोड़े-बहुत अन्न-जल की व्यवस्था करके कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। कार्य-प्रणाली में भी थोड़ा बदलाव आ गया है। मैंने अपने कुछ लोगों को अकाल-ग्रस्त स्थानों में कार्य करने भेजा है। इसका चमत्कारी फल हुआ है। मैं देख रहा हूँ; और चिरकाल से मेरी यही धारणा थी कि हृदय – केवल हृदय के द्वारा ही जगत् का मर्मस्थल स्पर्श किया जा सकता है। अत: इस समय मेरी काफी संख्या में युवकों को प्रशिक्षित करने की योजना है, (अभी उच्च श्रेणी से लेकर ही कार्यारम्भ करने का विचार है; निम्न श्रेणी से नहीं, क्योंकि उनके लिए हमें अभी कुछ समय और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी)। इनमें से कुछ को किसी एक जिले में भेजकर अपना पहला आक्रमण शुरू करना है। धर्मयुद्ध के इन अग्रगामी सैनिकों द्वारा जब मार्ग साफ हो जायगा, तब तत्त्व तथा दर्शन के प्रचार के लिये काफी समय मिलेगा।

कुछ लड़कों को इस समय शिक्षा दी जा रही है; परन्तु कार्य चलाने के लिए हमें जो जीर्ण आवास प्राप्त हुआ था, वह पिछले भूकम्प में टूट गया है। गनीमत इतनी ही है कि वह किराये का था। खैर, चिन्ता की कोई बात नहीं। कठिनाइयों के बीच और आवास के बिना भी हमें काम जारी रखना होगा। ... अब तक मुण्डित मस्तक, छिन्न वस्त्र और अनिश्चित आहार – हमारी इतनी ही व्यवस्था है।

(अल्मोड़ा, २० जून, १८९७)

इस समय मैं दुर्भिक्ष के कार्य में व्यस्त हूँ; और भविष्य के कार्य हेतु कुछ युवकों को प्रशिक्षित करने के सिवा शिक्षा-कार्य में अधिक जान नहीं डाल सका हूँ। अकालग्रस्त लोगों के भोजन की व्यवस्था में ही मेरी सारी शक्ति तथा पूँजी समाप्त होती जा रही है। यद्यपि अब तक बड़े सामान्य रूप से ही मुझे कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है, तो भी आशातीत परिणाम दीख रहा है। बुद्धदेव के बाद पहली बार देखने को मिल रहा है कि ब्राह्मण सन्तानें हैजाग्रस्त अन्त्यज जाति के रोगियों की शय्या के पास बैठकर उनकी सेवा में लगी हैं।[१]

(अल्मोड़ा, ४ जुलाई, १८९७)

मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि मेरा विश्वास है कि भारत के कार्य में तुम्हारी एक महान भूमिका होगी। भारतवासियों के लिये, और विशेषकर महिलाओं के

---

१ यह बात लिखते समय विवेकानन्द, निश्चय ही अज्ञेयवादी बुद्ध के अज्ञेयवादी ब्राह्मण शिष्य वर्तमान के विद्यासागर की बात नहीं भूले थे। जिस दिन वे एक हैजाग्रस्त आदिवासी बच्ची को सीने लगाकर ले आये थे और उसकी सेवा की थी, उसी दिन से बंगाल तथा भारतवर्ष में मानवता के इतिहास में नवीन प्रवाह की सृष्टि हुई थी। स्वामीजी ने कहा था, 'उत्तर भारत में मेरी आयु का ऐसा कोई भी नहीं होगा, जिस पर विद्यासागर का प्रभाव न पड़ा हो।' निवेदिता से बोले थे, 'अहा, यदि तुम्हारी विद्यासागर से भेंट हो पाती!' परन्तु निवेदिता के भारत आने के सात वर्ष पूर्व ही विद्यासागर का देहान्त हो चुका था। अस्तु, विद्यासागर के जीवन का दुर्भाग्य था कि वे इस सेवा की कोई परम्परा नहीं शुरू कर सके। इस परम्परा की विवेकानन्द द्वारा ही सृष्टि हुई थी और वह प्रचलित हिन्दू समाज के भीतर ही हुई थी। इस काल के १४-१५ साल बाद, जब किशोर सुभाषचन्द्र ने अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा की परवाह न करते हुए, हैजा के रोगियों की सेवा की, तब भी उन्होंने स्वयं को विवेकानन्द का ही अनुगामी माना था।

लिये कार्य करने हेतु, पुरुष की नहीं, बल्कि एक नारी की – एक सच्ची सिंहिनी की जरूरत है।

भारत अभी महान नारियों को उत्पन्न नहीं कर सकता, उन्हें उसको दूसरे राष्ट्रों से उधार लेना होगा। तुम्हारी शिक्षा, निष्ठा, पवित्रता, असीम प्रेमभाव, दृढ़ संकल्प और सबसे ऊपर तुम्हारे केल्टिक रक्त ने तुम्हें एक वैसी ही नारी बनाया है, जैसी कि आवश्यकता है।

फिर, कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। यहाँ के कष्टों, अन्धविश्वासों तथा गुलामी की तुम कल्पना तक नहीं कर सकती। तुम्हें एक ऐसे अर्धनग्न स्त्री-पुरुषों के समुदाय के बीच रहना होगा, जिनके जाति और पृथकता के अनोखे विचार हैं, जो भय या द्वेष के कारण गोरों (अंग्रेजों) से दूर रहना चाहते हैं और उनके प्रति बड़ी घृणा का भाव रखते हैं। दूसरी ओर अंग्रेज लोग तुम्हें सनकी समझेंगे और तुम्हारे हर चाल-चलन को शंका की दृष्टि से देखते रहेंगे।

फिर यहाँ भयंकर गर्मी पड़ती है; हमारा शीतकाल अधिकांश स्थानों में तुम्हारी गर्मी के समान होता है और दक्षिण में तो हमेशा आग बरसती रहती है।

नगरों के बाहर कोई भी यूरोपीय सुख-सुविधाएँ पाने की सम्भावना नहीं है। इन सब के बावजूद यदि तुम इस कार्य में उतरने का साहस करोगी, तो तुम्हारा स्वागत है, सौ बार स्वागत है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, अन्य स्थानों के समान ही यहाँ भी मैं एक साधारण मनुष्य हूँ, तथापि मेरा जो भी थोड़ा-बहुत प्रभाव है, वह तुम्हारी सहायता में लगा दिया जाएगा।

इस कार्यक्षेत्र में कूदने के पूर्व तुम्हें भलीभाँति विचार कर लेना होगा। परन्तु कार्य आरम्भ कर देने के बाद यदि तुम असफल हो जाओ या अरुचि का अनुभव करो, तो मैं अपनी ओर से वचन देता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, तुम वेदान्त को त्याग दो या उसमें स्थित रहो, मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारे साथ हूँ। जैसे 'मर्द की बात और हाथी के दाँत' एक बार बाहर निकलने पर वापस नहीं जाते, वैसे ही (धीर) पुरुष अपने वचन पर अटल रहते हैं। वह वचन मैं तुम्हें देता हूँ। साथ ही मैं एक बार फिर तुम्हें सावधान कर देता हूँ कि तुम्हें यहाँ अपने ही पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा; कुमारी मूलर या किसी अन्य का आश्रय लेने से काम नहीं चलेगा। ...

(अल्मोड़ा, २९ जुलाई, १८९७)

कुछ लोग दूसरों के नेतृत्व में सर्वोत्कृष्ट कार्य करते हैं। हर मनुष्य का जन्म नेतृत्व करने के लिए नहीं होता। श्रेष्ठ नेता वह है जो 'शिशुवत् मार्ग-दर्शन करता है।' शिशु, ऊपरी तौर से हर किसी पर आश्रित प्रतीत होते हुए भी घर का राजा है। कम-से-कम मेरे विचार से तो यही रहस्य है। ... बहुत-से लोग अनुभव करते हैं, परन्तु अभिव्यक्त कुछ ही लोग कर सकते हैं। जिनमें दूसरों के प्रति अपने प्रेम, प्रशंसा, और सहानुभूति को प्रकट करने की क्षमता होती है; वे दूसरों की अपेक्षा अपने विचारों का प्रचार करने में अधिक सफल होते हैं। ...

महान कठिनाई यह है : मैं देखता हूँ कि लोग प्राय: अपना सम्पूर्ण प्रेम मुझे दे देते हैं; परन्तु मैं बदले में किसी को अपना पूरा प्रेम नहीं दे सकता, क्योंकि उसी दिन मेरे कार्य का सर्वनाश हो जायगा। परन्तु कुछ लोग ऐसे हैं, जो ऐसे प्रतिदान की अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि उनमें व्यक्तिनिरपेक्ष व्यापक दृष्टि का अभाव होता है। कार्य के लिए यह पूर्णत: आवश्यक है कि मुझे अधिक-से-अधिक लोगों का उत्साहपूर्ण प्रेम प्राप्त हो, परन्तु मैं स्वयं पूर्णत: नि:संग रहूँ। अन्यथा ईर्ष्या और झगड़ों में कार्य का सर्वनाश हो जायगा। नेता के लिये व्यक्तिनिरपेक्ष होना अनिवार्य है। मेरा विश्वास है कि तुम इसे समझती हो। मेरा आशय यह कदापि नहीं है कि मनुष्य पाखण्डी के समान दूसरों की भक्ति का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करे और पीठ-पीछे हँसता रहे। मैं जो कहना चाहता हूँ, वह यह है कि मेरा प्रेम नितान्त व्यक्तिगत है, परन्तु जैसा कि बुद्ध ने कहा है, यदि 'बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय' आवश्यक हो, तो मुझमें अपने हाथों से ही अपने हृदय को उखाड़ डालने की भी क्षमता है। इस प्रेम में मतवालापन तो है, परन्तु कोई बन्धन नहीं है। प्रेम के प्रभाव से जड़ भी चैतन्य हो उठता है। यही तो हमारे वेदान्त का सार है। वस्तु एक ही है; अज्ञानी इसे जड़ के रूप में देखते हैं और ज्ञानी ईश्वर के रूप में। जड़ में चैतन्य के क्रमिक दर्शन का इतिहास ही तो सभ्यता का इतिहास है। अज्ञानी लोग निराकार को साकार रूप में देखते हैं और ज्ञानीजन साकार में भी निराकार देखते हैं। दु:ख और सुख, आनन्द और शोक के द्वारा हम यही सबक तो सीख रहे हैं। ...

(श्रीनगर, काश्मीर, १ अक्तूबर, १८९७)

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (१/६)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

विचित्र बात थी ! जब धनुष टूट गया, जयमाल पहना दी गई, तब महाराज जनक भगवान श्रीराम और श्रीसीताजी को रथ में बिठाकर आयोध्या के लिये बिदा कर देते। यही परम्परा थी। अब जब धनुर्भंग हो गया, जयमाला हो गई, तब इतनी बड़ी बारात लाने की क्या आवश्यकता थी? बारात भी कैसी विचित्र रही होगी? बड़ी धूमधाम से बारात अयोध्या से मिथिला की ओर जा रही थी। बारात देखकर लोग बड़े प्रभावित थे। बोले, वाह, ऐसी बारात? पर जब कोई पूछ लेते थे कि इस बारात में वर कहाँ है? तो पता चला कि वर तो पहले से ही ससुराल में टिका हुआ है। विचित्र बारात थी ! वर टिका हुआ है ससुराल में, बारात चली जा रही है। इसका अभिप्राय यह है कि जनक, तुम तो कृतकृत्य हो गये, पर वे जो नहीं हो पाए हैं, उन्हें कृतकृत्य करने के लिये भी तो आमन्त्रित करो। महाराज जनक का निमंत्रण मिलते ही महाराज दशरथ इतने आनन्दित हुए कि विवाह के लग्न से बहुत पहले ही बारात लेकर जनकपुर आ पहुँचे –

प्रथम बरात लगन तें आई। १/३०८/७

गए बीत कछु दिन एहि भाँती। १/३११/४

बारात आकर जनकपुर में टिकी हुई है, समय बीतता जा रहा है और तब एक मंगल लग्न आता है –

मंगल मूल लगन दिनु आवा।
हिम रितु अगहनु मासु सुहावा।। १/३११/५

उस मंगलमय लग्न में भगवान श्रीराम और श्रीसीताजी का मंगल परिणय हुआ। उसी समय अचानक निर्णय लिया गया –

बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपनें सुकृत सुरतरु फल नए।।
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा। १/३२४/११

गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया –

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै ।
माँडवी श्रुत कीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै ।।१/३२४/११

क्या संसार में ऐसे कही निर्णय किया जाता है? इतने पहले से बारात जनकपुर में टिकी हुई थी, तो पहले से ही चर्चा हो जानी चाहिये थी। चारों राजकुमार तो थे ही, चारों कन्याएँ यहाँ थीं। पर गोस्वामीजी की शैली तो बड़ी अनोखी है। इसका अभिप्राय क्या है? चारों भाइयों का विवाह अगर निश्चित हो जाता, तो क्या होता? बोले जब चार राजकुमार दूल्हे के रूप में चलते, तो लगता कि ये चारों वर हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि जब चार वर होंगे तब वरत्व कहाँ रहा? वर तो एक ही होगा। उसको छोड़कर अन्य कोई वर हो नहीं सकता। संसार में जो वर होते हैं, उन बेचारों की समस्या यह होती है कि आज वे वर हैं और कल फिर जहाँ के तहाँ। तो उन्होंने कहा कि न न, यह कहने के लिये कि राम भी वर, भरत भी वर, लक्ष्मण, शत्रुघ्न भी वर, ऐसा नहीं है। वर तो एकमात्र ईश्वर हैं, अन्य तो मात्र उनके अनुगामी हैं। उस समय जनकपुर की स्त्रियाँ कहती हैं कि कितना अच्छा हो कि चारों भाइयों का विवाह हो जाय। तो क्या होगा? वही सूत्र जो जनकजी ने कहा था – **मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहु भाई**। यही वाक्य जनकपुर की स्त्रियों ने कहा –

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू।
तौ कृतकृत्य होई सब लोगू।। १/२२१/७

एक व्यक्ति को नहीं, सबको कृतकृत्यता का अनुभव होने लगे। यही हनुमानजी का सत्य है। हनुमानजी अशोकवाटिका में गये और जब माँ जानकी ने उन्हें आशीर्वाद दिया, तब हनुमानजी ने भी वही वाक्य कहा जो महाराज श्रीजनकजी ने कहा था। हनुमानजी ने कहा –

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। ५/१६/६

माँ, अब मैं कृतकृत्य हो गया। पर कृतकृत्य हो जाने के बाद हनुमानजी वहीं तो नहीं रुक गये। लौटकर आए, प्रभु से आग्रह किया कि आप लंका में सेना लेकर चलिए और युद्ध कीजिए। क्या उद्देश्य है इसका? वही सबको कृतकृत्य करने का सूत्र यहाँ भी है। समुद्र को पार करके श्रीसीताजी तक पहुँचने की क्षमता केवल श्रीहनुमानजी में थी। हनुमानजी कृतकृत्य हो गये। पर महान भक्त और संत केवल अपनी कृतकृत्यता से ही संतुष्ट नहीं होते। इसीलिए हनुमानजी यह चाहते हैं कि जो लोग समुद्र के किनारे रुक गये थे, वे भी तो कृतकृत्य हो जायँ। आनन्द कब आया? प्रभु सेना लेकर लंका गये। युद्ध हुआ। राक्षस मारे गये। उसके बाद भगवान श्रीराम और श्रीसीताजी विराजमान हैं, उन्हें बन्दर चारों ओर से घेरे हुए बैठे हुये हैं। देवताओं ने आकर कहा, महाराज, आज स्थिति बदल गई क्या? बोले –

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए।
निरखंति तवानन सादर ए।। ६/११०/१७

आज ये सभी बन्दर कृतकृत्य हो गये। मानो संतों के द्वारा, महापुरुषों के द्वारा जो भूमिका सम्पन्न की जाती है, वह सबको कृतकृत्य करने के लिये, सबको पूर्णता प्रदान करने के लिये होती है। भगवान श्रीरामकृष्ण ने जो विचार प्रगट किया, उसका भी उद्देश्य तो यही था। जब वे संसार के समस्त व्यक्तियों को, साधकों को बार-बार अपनी ओर आकृष्ट करते थे, तब उनका उद्देश्य था कि उस आनन्दमय स्थिति का अनुभव, उस परिपूर्णता की स्थिति का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को हो। उसका अर्थ है कि धर्म का उद्देश्य केवल व्यक्ति का उत्थान नहीं हो सकता। जब तक धर्म केवल व्यक्ति के स्वार्थ की पूर्ति के लिये है, व्यक्ति के उत्थान के लिये है, वह धर्म अधूरा है, वह धर्म पूर्ण नहीं है। धर्म पूर्ण तब होगा, जब व्यक्ति स्वार्थ से चले और धीरे-धीरे परमार्थ तक पहुँच जाय। उसके बाद की स्थिति आगे बढ़ जायेगी। स्वार्थ से प्रारम्भ होती है, और वह एक स्थिति ऐसी आती है, जहाँ व्यक्ति परमार्थ से भी आगे चला जाता है। भगवान राम के लिये कहा गया कि नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ भगवान श्रीराम जैसा कोई नहीं जानता –

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु
कोउ न राम सम जान जथारथु।। २/२५३/५

उसके आगे श्रीभरतजी के लिये कहा गया है - परमार्थ, स्वार्थ सुख की ओर कभी भरतजी ने स्वप्न में भी नहीं देखा –

परमारथ स्वारथ सुख सारे।
भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।। २/२८८/७

यह जो श्रीभरत के चरित्र की यात्रा है, धर्म की जो यात्रा है, वह भी बड़ी विलक्षण है। श्रीभरत ने बड़ा सुन्दर प्रश्न पूछा – आप लोग मुझे राज्य लेने के लिये क्यों कहते हैं? –

एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु। २/१७७

आप मेरे प्रति दया करके मुझसे राज्य लेने के लिये कह रहे हैं। क्या आप समझते हैं कि इसमें समाज और सारे राज्य का कल्याण है? मानो संकेत यह था, उनका स्पष्ट अभिप्राय यह था कि अगर मैं राज्य पा लेता हूँ, राज्य पाकर मेरा कल्याण तो होगा नहीं। साथ-साथ उन्होंने कितना सुन्दर प्रश्न किया – आप लोग सोचते हैं कि राजा रहेगा, तो प्रजा की रक्षा करेगा, न्याय करेगा, धर्म का पालन करेगा, पर जिस व्यक्ति को राज्य पाने के मूल में पिता की मृत्यु हुई हो, माताओं को कष्ट हुआ हो, प्रभु श्रीराम को वन जाना पड़ा हो, ऐसे व्यक्ति को राजा के रूप में पाकर समाज का हित होगा, आप लोग अगर ऐसा सोचते हैं तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य क्या होगा? इसमें समाज का रंचमात्र कोई हित नहीं है। उन्होंने कहा –

चाहिअ धरमसील नरनाहू। २/१७८/१
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसा तल जाइहि तबहीं।। २/१७८/२

अगर आप लोग राज्य मुझे देंगे, तो पृथ्वी रसातल में चली जायेगी। निश्चित रूप से सारे समाज का अकल्याण होगा। इसका अर्थ है कि सब लोग मेरे स्वार्थ का समर्थन करें, पर जो अन्याय और अनर्थ से राजा बना हो, वह न्याय और धर्म की रक्षा कैसे करेगा? यदि आप लोग मेरा हित चाहते हों, तो आप समझ लीजिए कि आप जो पद दे रहे हैं, यह न समझ लीजिएगा कि मैं पद का प्रेमी नहीं हूँ। मैं तो पक्का पदलोलुप हूँ। किसी की निन्दा करते हैं, तो कहते हैं कि बड़ा पदलोलुप है। गोस्वामीजी ने भरतजी

की वन्दना तो पदलोलुप के रूप में की है -

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना।

जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।

राम चरन पंकज मन जासू।

लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।। १/१६/३,४

यह तो भगवान राम के पद का लोभी है। श्रीभरत का तात्पर्य यह था, यह पद शब्द कितना संकेत भरा है। यह संकेत कितने महत्व का है। एक बार कभी मेरे मन में प्रश्न उठा कि भई, शरीर के अंगों में सबसे ऊपर तो सिर है। तो जब किसी को राष्ट्रपति बनाया जाय, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री बनाया जाय, तो यह क्यों नहीं कहते कि इनको राष्ट्रपति सिर मिला, प्रधानमंत्री सिर मिला, मुख्यमंत्री सिर मिला? कहा यह जाता है कि राष्ट्रपति का पद मिला, प्रधानमंत्री का पद मिला, इसका अर्थ यह है कि यह संकेत कर दिया कि पद सबसे नीचे है और पद का कार्य सारे शरीर का बोझ उठाना है। जो व्यक्ति पद पाता है, वह बोझ उठाता है। वह बोझ बनने के लिये नहीं, बोझ उठाने के लिये बना है। संकेत यह किया गया कि व्यक्ति जब भी गिरेगा, तो पैर के लड़खड़ाने से ही गिरेगा। व्यक्ति अगर सावधानी से नहीं चलेगा, फिसलेगा तो वह गिरे बिना नहीं रहेगा। गिरेगा तो वह जिसे सिर पर लिया हो, उसे लेकर गिरेगा। जबकि वे किसी को सिर पर क्या लेंगे, बहुधा वे तो खुद ही दूसरों के सिर पर सवार रहते हैं। ऐसी स्थिति में पद माने? पद का तात्पर्य है कि व्यक्ति अत्यन्त सजग होकर रहे। आपने देखा होगा कि शराब पीने वालों का पैर अत्यन्त लड़खड़ाता है। वे बेचारे जो लड़खड़ाते हैं, तो पद का जो मद कहा गया है न। पद का मद होगा तो पद ही लड़खड़ाएगा और उस व्यक्ति का पतन होगा। इसीलिये जब पद दिया गया, तो श्रीभरतजी ने कहा कि मैं ऐसा पद लेकर क्या करूँ, जिसका बोझ उठाना पड़े, लड़खड़ा कर गिरना पड़े। हमें तो ऐसा पद चाहिये, जिस पर सारा भार अर्पित करके शान्ति से रह सकूँ। वह भगवान का पद है, जहाँ सब कुछ अर्पित कर दें।

इसलिये जब रावण के चार मुकुट अंगद के हाथ में आए, तो रावण ने तो चार मुकुट सिर पर लगा लिये थे, पर अंगद ने उन चार मुकुटों को प्रभु की ओर भेज दिया। बन्दरों ने अंगद से पूछा कि वे चार मुकुट तुम स्वयं क्यों नहीं रख लिये? अरे कम-से-कम एक तो रख लेते अपने सिर पर लगाने के लिये। इतना बढ़िया मुकुट कहाँ मिलेगा? तो अंगद ने कहा कि मैं समझ गया, ये मुकुट जब रावण के सिर पर नहीं टिके, तो मेरे सिर पर भी टिकेंगे नहीं। इसको तो प्रभु के चरणों में ही अर्पित कर देना ठीक है। मानो अपना भार उतार कर प्रभु के चरणों में अर्पित कर देना है। मानो श्रीभरत यह कहते हैं कि इस कुरोग की दवा, मेरी समस्या का, समाज की समस्या का समाधान कोई क्षणिक बेहोंशी उत्पन्न करनेवाली नशे की दवा या शराब नहीं हो सकती। नशा उत्पन्न करनेवाली, अफीम वाला धर्म नहीं हो सकता। उन्होंने कहा –

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।

देखें बिनु रघुबीर पद जिय कै जरनि न जाय।।२/१८२

धर्म का तत्त्व, धर्म का अभिप्राय यह है कि जब धर्म हमें क्रमश: ऊपर ले जाकर भगवान के पद के सन्निकट पहुँचा देता है, तब तो वह धर्म धर्म होगा, और नहीं तो वह धर्म का लेश भी नहीं होगा।

यहाँ पर भी ठीक वही संदर्भ विभीषणजी के जीवन में है। वही धर्म और उस धर्म के द्वारा उत्पन्न होने वाली समस्याएँ और अन्त में वह जीव, जो रावण के नगर में रहता हुआ अपनी समझ से धर्म का पालन कर रहा था। रावण बड़ा भाई है, पिता के तुल्य है, पूज्य है, उसकी सेवा ही धर्म है और यह मानकर वे धर्म का पालन कर रहे थे। इस तरह से एक ओर लंका में दशानन मन्दिर है और दूसरी ओर हरि मन्दिर है, विभीषण के जीवन की यही दशा है। यही दशा हमारे आपके जीवन में भी है। लंका में हनुमान जी ने एक ओर तो दशानन मंदिर देखा और दूसरी ओर हरि मन्दिर भी भिन्न प्रकार से बना हुआ देखा -

गयउ दसानन मंदिर माहीं। ५/४/६

हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा। ५/४/८

हमारे आपके हृदय में भी तो दो मन्दिर बने हुए हैं। दशानन मन्दिर भी बना हुआ है और हरि मन्दिर भी बना हुआ है। जीव तो हरि मन्दिर का ही पुजारी है, पर दशानन मन्दिर में जो ठाट-बाट है, वह हरि-मन्दिर में कहाँ है? यह जो दिन-रात हमलोग शरीर की पूजा करने के लिये जैसा भोग लगाते हैं, कभी कोई हरि मन्दिर में वैसा भोग लगाता है? वहाँ तो बस एक औपचारिकता है, चलो भई, सस्ता से सस्ता क्या भोग लगा दें। अपने लिये, शरीर देवता के लिये महँगी से मंहगी वस्तु चाहिये और भगवान के लिये जो सबसे सस्ती वस्तु हो, उसे खरीदते हैं। कभी-कभी तो बड़ा आश्चर्य होता है। लोग बाजार में दुकानदार से सुपारी खरीदते हैं। दुकानदार ने पूछा, खाने के लिये कि पूजा के

लिये? पूजा के लिये चाहिये तो सड़ी सुपारी और अपने लिये चाहिए तो अच्छी सुपारी। भगवान के लिए तो सड़ी सुपारी से भी चल सकता है। जहाँ पर जीवन में दो मन्दिर बने हुए हैं, एक ओर दशानन मन्दिर और दूसरी ओर हरि मन्दिर, एक ओर धर्म और दूसरी ओर अधर्म, अत्याचार और पाप है । यही जीवन की समस्या है। हनुमानजी जैसे संत का संग पाकर जीव इससे मुक्त हो पाता है। तो मानो धर्म का सच्चा उद्देश्य, धर्म का प्रतिफल जो होना चाहिये, वह संत के द्वारा जब विभीषण को ज्ञात होता है, तभी वे भगवान की दिशा में बढ़ते हैं। मानो धर्म हमें ईश्वर की दिशा में ले जाने के लिये प्रथम सोपान है। वही विभीषण के जीवन में आपको मिलेगा। वे भी लंका का राजपद छोड़कर हर्षित होकर रामपद की ओर प्रस्थान करते हैं – **चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं**।

मन में भगवान के उन चरण कमलों की महिमा को स्मरण करते जाते हैं –

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।५/४२

इसी को केन्द्र बनाकर हम सब अगले दिनों में विचार करने की चेष्टा करेंगे। वस्तुतः धर्म का एक भ्रान्ति-मूलक रूप है और एक वास्तविक रूप है। जब विभीषण के जीवन में धर्म आता है, तब वे कैसे लंका का त्याग करके, समुद्र को पार करके श्रीराम के पास चले जाते हैं, इसे देखेंगे। उन्हें भगवान को पाने के लिये राज्य को छोड़ना होगा, लंका को छोड़ना होगा, समुद्र को पार करना होगा। जब वे सबको छोड़ते हैं, तभी श्रीराम को पाते हैं। इस तरह धर्म का एक सूत्रात्मक स्वरूप है, इसकी चर्चा कल से करेंगे । आज इतना ही। बोलिये सियावर रामचन्द्र की जय! **(क्रमशः)**

सच्ची क्रान्ति

स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द ने अमेरिका के शिकागो में आश्रम (Vedanta Society of Chicago) की स्थापना की थी। वे स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य और विद्वान, कुशल प्रशासक और प्रभावी वक्ता थे।

उनका पूर्व नाम सतीन्द्रकुमार था और जन्म ढाका के पास शेखरनगर गाँव में हुआ था। तब भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था। अनेक युवकों के सामने एक ही लक्ष्य था कि किस प्रकार अपनी मातृभूमि को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराया जा सके। इसके लिए विभिन्न राज्यों में क्रान्तिकारी समितियों का गठन हुआ था।

ऐसे ही ढाका में एक क्रान्तिकारी समिति से ज्ञानेश्वर महाराज जुड़े हुए थे। समिति का उद्देश्य ब्रिटिश राज को भारत से निकालना था। इस समिति के जो भी सदस्य बनते थे, उनके सामने एक शर्त रखी जाती थी कि भविष्य में जो कोई भी इस समिति को छोड़ेगा, उसे गोली से मार दिया जाएगा।

श्रीरामकृष्ण के अन्यतम शिष्य स्वामी प्रेमानन्द (बाबूराम महाराज) के सान्निध्य में आने से ज्ञानेश्वर महाराज के जीवन में अद्भुत परिवर्तन हुआ और उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के बारे में जाना। वे स्वामीजी के विचारों से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि स्वामीजी की चरित्र-निर्माण शिक्षा से ही लोगों में आमूलचूल क्रान्ति सम्भव है। चरित्र-निर्माण के द्वारा ही गृहस्थ, संन्यासी, क्रान्तिकारी और कारीगर एक अच्छे गृहस्थ, संन्यासी, क्रान्तिकारी और कारीगर बन सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज क्रान्तिकारी दल के नेता के पास गए और कहा कि वे यह दल छोड़ना चाहते हैं। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पुलिन दास इस दल के नेता थे। उन्होंने कार्यकारिणी समिति की एक बैठक बुलाई। समिति के सदस्यों ने सतीन्द्रकुमार को यह स्मरण दिलाया कि वे यदि समिति छोड़ देंगे, तो उन्हें गोली से मार दिया जाएगा। जब उनसे पूछा गया कि वे क्यों छोड़ना चाहते हैं, तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उन्हें लग रहा है कि क्रान्ति का यह पथ उचित नहीं है और यदि नियम के विरुद्ध जीवनदान दिया गया, तो वे रामकृष्ण मिशन के साधु बनेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों के बारे में वे किसी से कुछ नहीं कहेंगे। समिति के सदस्यों के बीच इस विषय में बहुत वाद-विवाद हुआ। दल के नेता पुलिन दास सतीन्द्रकुमार को प्रामाणिक और निष्ठावान मानते थे। उन्होंने उनके दल छोड़ने का अनुमोदन किया। समिति के सदस्यों को भी पुलिन दास की बात माननी पड़ी । इस प्रकार ज्ञानेश्वर महाराज को क्रान्तिकारी दल से मुक्त कर दिया और उनका रामकृष्ण मिशन में साधु बनने का मार्ग प्रशस्त हो गया। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (५२)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-११-१९७०

प्रश्न - मैं यदि ब्रह्म का अनुभव करता हूँ, तो मैं सभी शक्तियों का अधिकारी हो जाऊँगा, तब क्या मैं अपनी इच्छानुसार जो चाहूँ, वही कर सकूँगा?

महाराज – मैं ब्रह्म हूँ, यह तो ठीक है, किन्तु अपने को तैयार नहीं करने से अपनी शक्ति के सम्बन्ध में कैसे सजग हो सकोगे? धरती पर जितने बड़े-बड़े भवन बने थे, पुन: उतने बन सकते हैं, यदि उन्हें निर्माण करने के उपकरण और अन्यान्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध हों। क्षत्रिय ब्रह्मविद्या का अनुशीलन करते थे। इसके लिए अतुलनीय शक्ति की आवश्यकता होती है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:।' ब्राह्मणवृन्द सभ्यता को संरक्षित रखते थे। वे लोग कर्मकाण्ड – यज्ञ, वेदपाठ इत्यादि करते थे, एक नीतिपरायण, सुनियंत्रित जीवन यापन करते थे।

प्रश्न – यदि मैं मन से इष्टमंत्र का जप करूँ, तो क्या उससे लक्ष्य प्राप्त नहीं होगा?

महाराज – इष्ट में मन रहने पर तो होगा ! व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि मन कहाँ है। जैसे अपने इष्ट में मन लगाने की आवश्यकता है, वैसे ही अथवा उससे भी अधिक, अपने भीतर क्या हो रहा है, उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि नहीं रखने से संन्यासी नहीं बना जा सकता। यह चिन्तन करने का प्रयत्न करो। मैं महाकाश में उड़ता जा रहा हूँ और मेरे शरीर से एक-एक करके कोश गिरते जा रहे हैं। सबके अन्त में क्या रहता है, बताओ तो?

कारण-शरीर में दो प्रकार का अनुभव हो सकता है – लीला-रस या फिर वैसा न होने पर देह-मन-बुद्धि का साक्षी भाव। किन्तु जब तक देह-मन-बुद्धि से पृथक् नहीं होते हो, तब तक भक्ति के उच्चतम स्तर से भी पतन हो सकता है। मथुरादास विश्वास की देह ठंड से काँप रही है, किन्तु वे कहते हैं, ''अन्दर नहीं हिल रहा हूँ।'' सर्वदा ईश्वर का नाम-स्मरण-मनन करने पर भी पतन हो सकता है। सम्प्रति अनेक ऐसे लोग हैं, जो अपने मन को ठीक ढंग से नहीं देखते हैं और उसके परिणामस्वरूप वे धीरे-धीरे चेला-चेली बनाते जाते हैं। इसीलिए सर्वदा आत्मनिरीक्षण, विवेक, विचार करके कार्य नहीं करने से साधकों के लिये संकट की सम्भावना है। कर्म से मुक्ति नहीं होती।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।गीता.४.१४।।

ईश्वर के इस कर्म-रहस्य को समझकर कर्म करने से लक्ष्यप्राप्ति होगी। कर्म करने से तो फल मिलेगा ही। जो मुक्त होना चाहता है, वह सदा कर्म तो कर रहा है, किन्तु अपने मन में सर्वदा निष्कामभाव लाने का प्रयास करता है। इस प्रकार उसके द्वारा किये कर्म को कार्य नहीं कहते हैं। यह कार्य समाप्त करने का उसका प्रयास मात्र है, यह ईश्वर की उपासना है। जैसे मैं बहरमपुर तक चला गया, किन्तु सारगाछी लौटना चाहता हूँ। इसका उपाय क्या है? बहरमपुर से सारगाछी लौटने की जो क्रिया है, उसे आगे जाना नहीं कहा जायेगा। वैसे ही इस प्रकार का कर्म करना, कर्म नहीं है, यह उपासना है। जितने दिनों तक बिना कर्म किये नहीं रह सकते हो, उतने दिनों तक कर्म करो, उसके बाद योग में बैठ जाओ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।। गीता.६.३ ।।

ठाकुर ने कहा है, जो सामने आ रहा है, उसे निष्काम भाव से करते जाओ और प्रार्थना करो – ''हे प्रभो ! मेरी कर्म करने की इच्छा को कम कर दो।'' पहले एक हाथ से ईश्वर को पकड़ो और एक हाथ से कर्म करो, तब वह कर्म नहीं रहेगा, वह उपासना हो जाएगा, जैसे महाराज लोग करते थे।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' – जो जिस भाव से मेरा भजन

करता है, मैं भी उसे उसी भाव से प्राप्त होता हूँ। सात रंगोंवाले बर्तन से जिस रंग में रंगना चाहो, रंग लो, यह ठाकुर का दिया हुआ उदाहरण है। ठाकुर ने कुछ नया नहीं कहा है, सब शास्त्र की बात है। सिलहट में एक ब्राह्मण ने 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' पढ़कर कहा था, "वह सब शास्त्रों में है, नया कुछ नहीं है।" मेरा तो उसके साथ विवाद हो गया। मैंने कहा – "सब कुछ नया है।" किन्तु अब देखता हूँ, उसकी बात ही ठीक है। सब कुछ तो शास्त्रसम्मत है।

२१-११-६०

महाराज – सिलहट में एक बार हिन्दू-मुसलमान दंगा होने जैसी परिस्थिति हो गई थी। हिन्दू लोग सिलहट आश्रम में कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखने लगे। गृहस्थों की इच्छा थी कि आश्रम को एक केन्द्र के रूप में तैयार किया जाए। स्वामी सौम्यानन्द कम आयु के थे, उन्होंने उत्तेजित होकर सहमति दे दी। मैंने उन्हें पत्र लिखा, 'हम लोग संन्यासी हैं, हमारे लिए जैसे हिन्दू हैं, मुसलमान भी वैसे ही हैं, और हम लोगों को मारकर फेंक देने से कोई दुख की बात नहीं है, वह आनन्द की बात होगी। सौम्यानन्द बुद्धिमान थे, बात समझकर उन्होंने वह सब वहाँ से हटवा दिया।

जब स्वाधीनता मिली, तब मैं मुसलमानों की ओर से बोलता था, क्योंकि देश में सभी लोग उनके विरुद्ध हो गए थे। एक व्यक्ति प्रबल मुसलमान-विरोधी थे। उन्हें मुसलमानों के आदिम समाज के बारे में, मोहमम्द साहब ने उनके लिए क्या किया, प्राचीन समाज में क्या था, धीरे-धीरे मुल्लाओं के शासन में मुसलमान धर्म कैसा हो गया, आदि सब समझाने के बाद उन्होंने कहा – पन्द्रह आना विद्वेष चला गया है । **(क्रमशः)**

सन्तान नहीं होती, इसलिए लोग आँसूओं की झड़ी लगा देते हैं, धन की प्राप्ति नहीं होती इसलिए वे कितना दुख अनुभव करते हैं। किन्तु ऐसे लोग कितने हैं, जो भगवान के दर्शन नहीं मिले इसलिए दुखी होते हैं और रोते हैं? जो सचमुच ईश्वर को चाहता है, उनके लिए रोता है, वह उन्हें अवश्य प्राप्त करता है।

– भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस

वागीश्वरी वर दे !

नत्थूलाल चतुर्वेदी

वागीश्वरी वर दे !
सुखदा, वरदा मंगलप्रदा वागीश्वरी वर दे ।
शुद्ध विचार सदा निःसृत हों, देशभक्त कहलाऊँ,
दीनों का मैं बनूँ सहायक, ऐसा माँ बल दे ।। वागी..
मानव को मैं मानव मानूँ, विश्वप्रेम अपनाऊँ,
भगवत की यह सारी झाँकी, माँ ऐसी मति दे ।। वागी..
गुरु, माता और पिता देव हैं, आज्ञा उनकी पालूँ,
समदर्शी मैं बनूँ सृष्टि में, माँ ऐसी बुधि दे ।। वागी..
रहूँ दूर सारी छलना से, तुम यन्त्री मैं यन्त्र,
ध्यान अहर्निश रहे तुम्हारा, माँ ऐसा वर दे ।। वागी..

सरस्वती वन्दना

चन्द्रमोहनजी , टुंडला

जयतु जयतु जय मात सरस्वती जयतु जयतु जय मात सरस्वती ।
ज्ञानप्रदायिनी चित्त-प्रकाशिनी शब्दों की आधारिणी ।।
श्वेत वसन तुम धारण करती, चेतन कर मन उज्ज्वल करती,
वीणा कर से झंकृत करके, पापों का माँ मोचन करती ।
करुणा कर चरणों में ले लो, स्थिर चित्त प्रदायिनी ।।
जयतु जयतु जय मात सरस्वती ...
आसन कमल विराजित होकर, चंचल मन तुम शीतल करती,
जगज्जननि तुम शोभित होकर, त्यागभाव को प्रेरित करती ।
ज्योति जला दो घट-घट में तुम, भवसागर उद्धारिणी ।।
जयतु जयतु जय मात सरस्वती ...
हंस-सवारी ज्योतिस्वरूपा, भक्तों का तम भंजन करती ।
जगवन्दिनि तुम किरपा करके ऊर्ध्व मार्ग पर लेकर चलती ।।
मम वन्दन स्वीकार करो माँ, संकट क्लेश निवारिणी ।।
जयतु जयतु जय मात सरस्वती ...

स्थितप्रज्ञ संन्यासी स्वामी सारदानन्द

स्वामी मुक्तिमयानन्द

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई

(गतांक से आगे)

स्वामी विवेकानन्द ने स्वामी सारदानन्द के क्रोध-दमन के अद्‌भुत गुण की प्रशंसा करते हुए कहा था, ''शरत के अन्दर तो जैस ठण्डा रक्त है, किसी भी बात से वह गर्म नहीं होता।'' स्वामीजी कहते थे, ''साधु बनने के पहले सज्जन बनना सीखो ।'', यह हम सारदानन्दजी के जीवन में पाते हैं।

उन्होंने मठ-मिशन और श्रीमाँ की सेवा में स्वयं को एक पूजक-सेवक के रूप में समर्पित कर दिया था। स्वयं को 'श्रीमाँ के द्वारपाल' कहनेवाले सारदानन्दजी सभी कार्य पूजा के समान करते थे। उद्‌बोधन में भक्तगण जब महाराज के छोटे से कक्ष में प्रवेश करते, तब एक गद्दा, सामने एक छोटी टेबल पर दवात-कलम-कागज देखते। इसी छोटी-सी टेबल पर उन्होंने रचा था 'श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग' नामक महाग्रन्थ। यहीं से वे मठ-मिशन के सचिव के रूप में संघ-संचालन करते। अपने गुरु श्रीरामकृष्ण के समान ही प्रत्येक कार्य वे निपुणतापूर्वक करते थे और प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखते थे।

पूर्ण आत्मसमर्पण और निरभिमानता से स्वामी सारदानन्दजी ने जगदम्बा को श्रीमाँ के रूप में प्रत्यक्ष पाया था। लगभग १८ अठारह वर्षों तक श्रीमाँ की उन्होंने सेवा की, जो सर्वोच्च सेवा का अद्वितीय दृष्टान्त है। कितना आश्चर्य है ! स्वामी रामकृष्णानन्द जी और स्वामी सारदानन्दजी दोनों भाई श्रीठाकुर और श्रीमाँ की सेवा के ज्वलन्त दृष्टान्त बन गये हैं। आज भी दोनों भाइयों की सेवा का आदर्श संघ में अतुलनीय है। श्रीरामकृष्ण ने इन्हें ईसा के दल में, उनके अंतरंग के रूप में देखा था, जो ईसाई धर्म की स्थापना के नींव थे। अब वे पुन: श्रीरामकृष्ण के नव धर्म संस्थापन में नींव की भूमिका निभाने आविर्भूत हुए थे।

धीर-स्थिर सारदानन्दजी श्रीमाँ की सेवा उनके उठने-बैठने, खान-पान, रुचि-अरुचि, पसन्द-नापसन्द को अच्छे से समझकर, श्रीमाँ के सैकड़ों सांसारिक झंझटों के बीच अनासक्त होकर ईश्वर समर्पित भाव से करते थे। चाहे श्रीमाँ की चिकित्सा, पथ्यादि की व्यवस्था हो, चाहे उनके भाइयों की सम्पत्ति का बँटवारा या कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण देव के पैतृक निवास की व्यवस्था हो, चाहे उनके उद्‌बोधन भवन में निवास, भक्तों के आवागमन, गोलाप माँ, योगिन माँ, आदि स्त्री-भक्तों की व्यवस्था आदि हो, वे सब कार्य श्रद्धा से करते थे। श्रीमाँ ने महाराज की इस अद्‌भुत सेवा से अभिभूत होकर कहा था, ''शरत मेरा मुकुटमणि है, वह मेरे विषय में जो सुनिश्चित करेगा, वही होगा।'' एक बार श्रीमाँ ने कहा था, ''मेरा भार वहन करना क्या सहज है? दो चार दिन सब कर सकते हैं, परन्तु शरत को छोड़कर मेरा भार उठा सके, ऐसे दूसरे किसी को मैं नहीं देखती। वह मेरा वासुकि है, सहस्त्र फन फैलाकर काम करता है।'' श्रीमाँ तात्त्विक दृष्टि से उनके लिए साक्षात् आद्याशक्ति जगदम्बा थीं, पर लौकिक जगत में उनकी अपनी माँ थीं। उन्हें तत्त्वत: श्रीमाँ का स्वरूप भी ज्ञात था। श्रीठाकुर की अभिन्न शक्ति श्रीमाँ को नमन करते हुए उन्होंने प्रणाम मन्त्र रचा था –

यथाग्नेर्दाहिका शक्ती रामकृष्णे स्थिता हि या।

सर्वविद्यास्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम्।।

युगावतार श्रीरामकृष्ण की शक्ति श्रीमाँ अग्नि की दाहिकाशक्ति की तरह अभिन्न थीं। श्रीमाँ के लीलावसान

के बाद वे पुन: उनके स्वरूप-ध्यान में लीन हो गये थे।

सारदा मठ की अध्यक्षा और श्रीमाँ की सेविका सरला देवी, को उन्होंने कहा था, "इतने दिन जिनकी मानवरूप में सेवा की थी, अब उनको तत्त्वत: जानने की चेष्टा करो।"

रामकृष्ण संघ में उनका महासचिव का कार्यकाल असाधारण था। उस समय कुछ क्रान्तिकारी स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित होकर रामकृष्ण मठ में साधु बने थे । उन्हें लगा था कि स्वामी विवेकानन्द के विचारों से ही भारत में चरित्र-बल के आधार पर सच्ची स्वतन्त्रता सम्भव है । इसलिए सशस्त्र क्रान्ति का पथ त्यागकर वे साधु बने थे । किन्तु ब्रिटिश सरकार की उन पर पैनी दृष्टि थी । वे बेलुड़ मठ को शंका की दृष्टि से देखते थे । स्वामी सारदानन्दजी को ब्रिटिश सरकार को प्रमाण देना पड़ा था कि बेलुड़ मठ का सशस्त्र क्रान्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह पूर्णरूपेण एक आध्यात्मिक संस्था है । राहत-कार्य का संचालन करना, ठाकुर और श्रीमाँ के शिष्यों का ध्यान रखना, मठ-मिशन की सभाएँ आयोजन करना और सर्वोपरि नवागत ब्रह्मचारी-साधुओं को त्याग के पथ पर प्रशिक्षित करना इत्यादि प्रत्येक कार्य का दायित्व रामकृष्ण संघ के महासचिव के रूप में स्वामी सारदानन्दजी के ऊपर था । सभी कार्य उनके लिए 'संघरूपी' श्रीरामकृष्ण की सेवा थी। उनका सर्वस्व श्रीरामकृष्ण को समर्पित था।

स्वतंत्रता संग्राम में युक्त एक युवक स्वामीजी के आदर्शों से प्रेरित हो संघ में सम्मिलित होने आया। वयोवृद्ध सारदानन्दजी को युवक के भाव-परिवर्तन और स्वतन्त्रता आन्दोलन से पृथकता का अंग्रेज सरकार को प्रमाण देने जाना पड़ा। विषम स्थिति में भी निर्विकार चित्त से वे सब शंका-समाधान करके ही लौटे। एक साधु के पूछने पर महाराज ने कहा, "मेरा अपमान कौन कर सकता है? मेरा मन यदि इस घटना को अपमान के रूप में नहीं लेता है, तो मैं कैसे अपमानित हुआ? मेरा अपना है ही क्या? जब श्रीठाकुर के चरणों में देह-मन-प्राण सब कुछ सौंप दिया है, तब अच्छे-बुरे, मान-अपमान इन सबका स्थान कहाँ? मेरे लिए कुछ भी चिन्ता मत करो।"

यद्यपि उन्होंने श्रीरामकृष्ण के स्थूल देह की सेवा कुछ वर्ष ही की थी, परन्तु उनके संघ-शरीर की पूजाभाव से तीस वर्षों से अधिक सेवा की थी। श्रीरामकृष्ण ने अपने नवीन धर्म-स्थापना के लिये स्वामी विवेकानन्द को चुना था। उस आंदोलन को दृढ़ नींव पर प्रतिष्ठित करने हेतु स्वामी सारदानन्दजी की गोद में चरण रखकर परखा था। स्वामीजी के साथ शरत् महाराज का दिव्य मिलन हुआ, जिनका भार भी ठाकुर ने स्वामीजी को ही सौंपा था। इन दोनों महापुरुषों के प्रगाढ़ सम्पर्क का परिचय देते हुए स्वामी विवेकानन्द की पाश्चात्य अनुयायी श्रीमती जोसेफिन मैक्लाउड ने श्रीमती मीड को पत्र में लिखा था – "श्रीरामकृष्ण हमेशा स्वामी सारदानन्द और स्वामी विवेकानन्द को साथ-साथ देखना चाहते थे।"

स्वामी विवेकानन्द जी के मतानुसार आदर्श चरित्र वह है, जिसमें चारों योगों का सुन्दर समन्वय हो। इसका मूर्तिमान उदाहरण स्वामीजी ने शरत् महाराज में देखा था। शरत् महाराज भी स्वामीजी के भावों और आदर्शों को गंभीरता से समझने तथा आचरण में लाने का प्रयास करते थे। जिन्होंने श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग के दूसरे खण्ड में 'श्रीरामकृष्ण देव दिव्य भाव और नरेन्द्रनाथ' का अध्ययन किया है, वे इस बात को समझ पायेगें। स्वामीजी ने शरत् महाराज में अपने ईप्सित व्यक्तित्व को देखकर उन्हें संघ का प्रथम महासचिव बनाया था।

बहुत-सी चुनौतियों, कठिनाईयों के बीच रामकृष्ण मठ का प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ था। इन सब बाधाओं में कुशल कप्तान की तरह संघरूपी जहाज का संचालन सारदानन्दजी ने किया था। श्रीमाँ के आवास उद्बोधन के लिए धन संग्रह हेतु 'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' ग्रन्थ के प्रणयन, नवागत साधुओं के जीवन-गठन, श्रीमाँ की सेवा, संघ-संचालन, गुरु रूप में भक्तों-शिष्यों का मार्गदर्शन, संघ के कार्यों में दिशा-निर्देशन, ब्रिटिश सराकर के अपप्रचार व रुष्टता से संरक्षण, पूजा-अनुष्ठान, श्रीमाँ और ब्रह्मानन्दजी आदि के मन्दिर निर्माण, प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों में एक-सी लगन, परिश्रम और दिशा-निर्देश से उन्होंने संघ को एक दृढ़ भूमि पर स्थापित किया था। ○○○

अनुराग और व्याकुलता

श्रीरामकृष्ण परमहंस

अनुराग होने पर ईश्वर मिलते हैं। खूब व्याकुलता होनी चाहिए। खूब व्याकुलता होने पर सम्पूर्ण मन उन्हें अर्पित हो जाता है।

''एक व्यक्ति की एक लड़की थी। बहुत कम आयु में लड़की विधवा हो गयी थी। पति का मुख उसने कभी न देखा था। दूसरी स्त्रियों के पतियों को आते-जाते वह देखती थी। उसने एक दिन कहा, ''पिताजी, मेरा पति कहाँ है?' उसके पिता ने कहा, 'गोविन्द जी तेरे पति हैं। उन्हें पुकारने पर वे तुझे दर्शन देंगे।' यह सुनकर वह लड़की द्वार बन्द करके गोविन्द को पुकारती और रोती थी। वह कहती थी – 'गोविन्द! तुम आओ, मुझे दर्शन दो, तुम क्यों नहीं आते! छोटी लड़की का यह रोना सुनकर गोविन्दजी स्थिर न रह सके। उन्होंने उसे दर्शन दिए।

''बालक जैसा विश्वास, बालक माँ को देखने के लिये जिस तरह व्याकुल होता है, वैसी व्याकुलता चाहिए। इस व्याकुलता के होने पर समझना चाहिए कि अरुणोदय हुआ। इसके बाद सूर्योदय होगा ही। इस व्याकुलता के बाद ही ईश्वर-दर्शन होता है।

'जटिल बालक की कथा आती है। वह पाठशाला जाता था। कुछ जंगल की राह से पाठशाला जाना पड़ता था, इसलिये वह डरता था। उसने अपनी माँ से यह कहा। माता ने कहा, 'डर क्या है? तू मधुसूदन को पुकारना।' बच्चे ने पूछा, 'मधुसूदन कौन है?' माता ने कहा, 'मधुसूदन तेरे दादा हैं।' जब अकेले में जाते समय वह डरा, तब एक आवाज लगायी– 'मधुसूदन दादा! कहीं कोई न आया। तब वह, 'कहाँ हो मधुसूदन दादा! जल्दी आओ, मुझे बड़ा डर लग रहा है', कहकर जोर-जोर से पुकारते हुए रोने लगा। मुधुसूदन न रह सके। आकर कहा, 'हम यहाँ हैं, तुझे भय क्या है?' यह कहकर उसे साथ लेकर वे पाठशाला के रास्ते तक छोड़ आए, और कहा, 'तू जब बुलाएगा तभी मैं दौड़ा आऊँगा, भय क्या है?' यही बालक का विश्वास है ! यही व्याकुलता है! ○○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३०३. हेतुरहित परहित निरत होत सच्चे संत

मोलोकोर्ड द्वीप में कुष्ठधाम के पास ही एक चर्च थी। एक दिन जब कुष्ठरोगियों ने चर्च से घंटे की जोर-जोर से बजने की आवाज सुनी, तो वे सब चर्च में इकट्ठा हो गए। उन्होंने फादर डेमियन को जोर-जोर से घंटा बजाते देखा। पादरी युवावस्था में ही बेल्जियम से इस द्वीप में आकर बस गए थे और कुष्ठधाम के रोगियों की सेवा शुश्रूषा में जी-जान से जुटे थे। घंटा बजाना बंद कर उन्होंने रोगियों से कहा, ''भाइयो और बहनो! आज मैं बहुत खुश हूँ। घंटा बजाकर मैं अपनी खुशी प्रकट करना चाहता हूँ। बात यह है कि अब तक मैं आप लोगों की एक पराए व्यक्ति की तरह सेवा-शुश्रूषा करता था, किन्तु अब कुष्ठ रोग ने मेरे शरीर में पैर पसारना शुरू कर दिया है। इसलिए आप लोग मुझे अब अपना ही समझें।' यह सुनते ही लोगों ने रोना शुरू किया। एक बूढ़े रोगी ने उनसे कहा, ''फादर इससे पहले की यह रोग आपके शरीर को पूरी तरह से ग्रस्त कर ले, आप फौरन बेल्जियम लौट जाएँ।

फादर ने दृढ़ता से कहा, ''नहीं, नहीं। मौत मुझे इतनी जल्दी अपना ग्रास नहीं बनाएगी । आप लोगों की सेवा करना मेरा ध्येय है। मैं अपने लक्ष्य से कदापि नहीं डिगूँगा। आपकी सेवा मे ही मेरा सुख है। जब तक मुझमें प्राण है, मैं पूर्ववत् आपकी सेवा करता रहूँगा।' दृढ़ मनोबल वाले इस संत पुरुष ने अपनी व्याधि को विस्मृत कर अपना जीवन कुष्ठ रोगियों की सेवा में समर्पित कर दिया।

सेवा मानव का परम धर्म है। जिनके मन में रुग्ण, पंगु, असहाय लोगों के प्रति करुणा का उदय होता है, वे उनके दु:ख को स्वयं का दु:ख मानकर नि:स्वार्थ भाव से उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। उनकी सेवा को प्रभु की सेवा मानकर वे सेवा-शुश्रूषा से पीछे नहीं हटते। अगरबत्ती के समान कण-कण जलकर अपनी सुगंध सर्वत्र बिखेरकर वे अमर हो जाते हैं। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१४)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

– महाराज, बहुत से पंडित शास्त्र पढ़ने के पहले कहते हैं कि बारह वर्ष व्याकरण पढ़कर आओ।

महाराज – हाँ, बारह वर्ष व्याकरण भी नहीं पढ़ा और शास्त्र भी नहीं पढ़ा।

– महाराज ऐसा भी हो सकता है कि पढ़ने की इच्छा है, लेकिन ऐसे आश्रम में गया कि कार्य अधिक होने के कारण पढ़ने का समय ही नहीं मिल रहा है।

महाराज – इतना कार्य कोई नहीं करता कि थोड़ा पढ़ने को भी समय नहीं मिले।

– सुना है कि राहत-कार्य में थोड़ा-सा भी समय नहीं मिलता है। यद्यपि मैंने राहत-कार्य नहीं किया है।

महाराज – यह बात बिल्कुल सत्य नहीं है। अच्छा बताओ, भोजन करने के लिए समय मिलता है न? सोने के लिए, भ्रमण करने के लिये, वार्तालाप करने के लिये समय मिलता है न? श्वास-प्रश्वास लेने का समय मिलता है न? तब !

– इसका अर्थ है कि इसमें से ही समय निकाल लेना होगा।

महाराज - हाँ, वैसे ही करना होगा। ये हुई सच्ची बात ! समुद्र की तरंग शान्त होगी, तब स्नान करूँगा, ऐसा कभी नहीं होगा। समुद्र की तरंग कभी भी शान्त नहीं होगी। जो करना है, उसी अवस्था में कर लेना। असली बात है अपनी इच्छा का होना।

– महाराज कर्म के बीच-बीच में कुछ समय अवश्य मिलता है, किन्तु उस थोड़े से समय में शास्त्र पढ़ना या शास्त्रार्थ-चिन्तन करने की ठीक भावना या रुचि नहीं होती।

महाराज – उस भावना को लाने के लिए ही चर्चा करनी होती है। वास्तव में बाह्य विघ्न से अधिक आन्तरिक विघ्न ही प्रबल होता है। इसलिए अन्तर्मुखी होने की आवश्यकता है। दीर्घ काल तक सम्पूर्ण रूप से तल्लीन नहीं रहने पर नहीं होता है। इस सन्दर्भ में मैं अपने जीवन का एक अनुभव सुनाता हूँ। तब मैं उत्तरकाशी में था। ठीक उत्तरकाशी में नहीं, वहाँ से नीचे एक गुफा में था। दिन में एकबार भिक्षा माँगकर लाता था। सब अच्छा था। एक दिन गुफा के भीतर था। अचानक बाहर बहुत शोर सुना। क्या घटना घटी, यह जानने के लिए बाहर आया। देखता हूँ, किसी राजनीतिक दल के बहुत से लोग वहाँ शिविर लगाये हुए हैं। एक व्यक्ति से पूछा, आप लोग कब तक रुकेंगे? उन्होंने कहा – एक महीना। मैंने सोचा, ये लोग एक महीना रुकेंगे। तब तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा। अब यहाँ रहा नहीं जायेगा, यह सोचकर अगले दिन मैं दूसरा स्थान खोजने के लिये निकला। एक गुफा मिली। लेकिन वर्षा ऋतु थी। देखा कि चारों ओर से पानी गिर रहा है। पानी गिरकर बहुत जमा हो गया है। वह गुफा भी ठीक नहीं लगी। गुफा खोजते-खोजते एक दूसरी गुफा मिली। किन्तु उस गुफा के सामने सारा दिन लोग पानी लेने के लिए आते थे। सारा दिन लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वह भी पसन्द नहीं पड़ी। एक दिन दिनभर घूमते-घूमते थक गया था। मार्ग में एक गाँव में कुछ भिक्षा माँगकर खाया। जो भी हो, सारा दिन घुमकर अपनी गुफा में वापस आ गया। बहुत थकावट थी। मैंने सोचा, मैं क्यों स्वयं इतना व्यग्र हो रहा हूँ, जो हमारी सारी व्यवस्था कर रहे हैं, मुझे देख रहे हैं, उन्हें भार देकर मैं क्यों न निश्चिन्त हो जाऊँ? यह बात सोचते-सोचते सारे दिन की थकावट के कारण सो गया। दूसरे दिन सबेरे उठकर देखता हूँ, तो न जाने क्यों वे सभी लोग शिविर उठाकर कहीं चले गये हैं। **(क्रमशः)**

ठाकुर की मुरली : स्वामी अद्भुतानन्द

जयन्ती विशेष

डॉ. ऊषा वर्मा

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव कहते थे, यदि अहंकार मन से नहीं जाता है, तो कोई बड़ा अहंकार (भक्त 'मैं') पाल लेना चाहिए। छपरा जिले के लोगों ने स्वामी अद्‌भुतानन्द उर्फ लाटू महाराज को लेकर एक बड़ा अहंकार पाल लिया है। उनका इसी जिला के अद्‌भुत लाल होने का अंहकार ! ठाकुर के १६ शिष्यों में से एक शिष्य होने का अहंकार ! ठाकुर की मुरली होने का अहंकार !

वैसे तो छपरा के लोग यह सात्त्विक अभिमान रखते ही हैं कि छपरा की मिट्टी में अध्यात्म की नमी है। यहाँ की धरती आध्यात्मिक फसल के लिये खूब उपजाऊ है। इस मिट्टी पर आध्यात्मिक चेतनासम्पन्न कई अद्‌भुत लालों का जन्म हुआ है। इसी मिट्टी के खाद-पानी से उन लोगों ने तप की दिशा में प्रयाण किया है। इसी मिट्‌टी के संस्कार से उनका व्यक्तित्व आध्यात्मिक सौरभ से इतना सुवासित हुआ है कि छपरा या आसपास के गाँव-जवार में ही नहीं, देश-विदेश में वे लोग सुवासित हुए हैं और उनके कारण छपरा को अपनी एक विशेष पहचान मिली है, सम्मान मिला है।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि भारत की आत्मा अध्यात्म है। यह बात छपरा पर पूरी तरह लागू होती है। यह भी एक विलक्षण संयोग है कि अपने भूगोल के प्रसंग में छपरा लघु भारत है। तीन ओर से पानी से घिरा हुआ। छपरा के उत्तर और पूर्व में गंडक नदी बहती है। दक्षिण गंगा और सरयू से घिरा हुआ है। इन तीन ऐतिहासिक पौराणिक पवित्र नदियों के कारण दो संगम बनते हैं। सोनपुर में गंगा-गंडक का मिलन होता है और छपरा में सरयू-गंगा का। इसके अतिरिक्त खनवा, दाहा, गंडकी, गगरी आदि कई छोटी-बड़ी नदियाँ है, जिनसे सिंचाई का सुख मिलता है, तो दहार का, बाढ़ का दुख भी भोगना पड़ता है।

बहुत पहले कभी यह पूरा क्षेत्र जंगल था। झुंड के झुंड हिरण रहा करते थे। इसलिये यह सारण्यक कहलाया। यही सारण्यक बिगड़ते-बिगड़ते अपभ्रंश होकर सारण कहलाने लगा। जंगल और नदी से तप के अनुकूल वातावरण बना। ऐसे यह लूट-खसोट का क्षेत्र भी बन जाता, किन्तु, इस धरती का भाग्य और उस युग के लोगों की बुद्धि की महिमा है कि नदियों के किनारे-किनारे जंगल के भीतर-भीतर साधु, संन्यासी, ऋषि, मुनि तप करने लगे। उन्हीं के तप से तप:पूत है सारण की धरती। न्याय शास्त्र के जनक गौतम ऋषि ने छपरा से पाँच किलो मीटर दूर पश्चिम गोदना में अपना आश्रम बनाया था। यहीं श्रीहनुमानजी का ननिहाल था, जहाँ माता अंजनी का जन्म हुआ था और उन्होंने घोर तपस्या की थी। छपरा से ११ किलोमीटर पूरब में बसा चिरांद गाँव को कई प्रतापी राजा-महाराजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। महात्यागी राजा मौर्यध्वज की राजधानी यहीं थी। पुरातात्त्विक खुदाई से मिले साक्ष्य के आधार पर अब इस बात को पूरे विश्वास से कहा जाने लगा है कि चिरांद कभी बिहार प्रान्त का सबसे प्राचीन गाँव रहा होगा और सांस्कृतिक चेतना का जीता जागता उदाहरण भी। भगवान बुद्ध और उनके अनुयायियों ने इस गाँव को अपना कार्य क्षेत्र बनाया था। जन-कल्याण के लिये असुर वृत्रासुर के संहार की जरुरत को ध्यान में रख कर देवराज इंद्र की माँग पर अपनी अस्थियों का दान करने वाले पौराणिक ऋषि दधीचि कभी छपरा में सरयू नदी के किनारे रहा करते थे। कहते हैं, उनका आश्रम वहीं था, जहाँ आज उमानाथ का मंदिर अवस्थित है। वह आश्रम दधीचि आश्रम के नाम से विख्यात था। बाद में दधीचि आश्रम शब्द अपभ्रंश होकर दहियावाँ कहलाने लगा। आज यह छपरा का एक बड़ा मुहल्ला है। दहियावाँ सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। कभी यह पूरा का पूरा दियारा ऋषि मुनि का तपस्थल था। छपरा से लगभग २५ किलोमीटर पश्चिम सिसवन है। कहते हैं कि यहाँ राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के होता शृंगी ऋषि ने तपस्या की थी। छपरा से ५० किलोमीटर पूरब में बसा सोनपुर बहुत से पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसंगों

का गवाह रह चुका है। कभी यहीं गज-ग्राह की लड़ाई हुई थी, जहाँ भक्त के प्रति भगवान का प्रेम उजागर हुआ था। उसी उपलक्ष्य में आज भी यहाँ एशिया का सुप्रसिद्ध सोनपुर मेला लगता है। महर्षि वेदशिरा और देवल ऋषि की तपोभूमि है यह। आमी छपरा से मात्र २७ किलोमीटर पूरब है। दुर्गासप्तशती में वर्णित राजा सुरथ और समाधि ने यहीं देवी माता की आराधना की थी। महाराज दक्ष प्रजापित की कन्या सती शिवपत्नी ने यहीं आत्मदाह किया था। आज का दिघवारा पौराणिक युग में महाराजा दक्ष के महल का दीर्घद्वार था, जो छपरा से मात्र ३० किलोमीटर पूरब है। कभी शिल्हौड़ी में इन्द्र और यमराज ने बाज और कबूतर बनकर राजा शिवि के विवेक की परीक्षा ली थी। दोन में महाभारतकालीन द्रोण का आश्रम था। मंदिर और पूजा-अर्चना की दृष्टि से भी छपरा की बहुत महिमा है। साम्प्रदायिक सद्भावना में भी बेमिसाल है छपरा। मढ़ौरा की गढ़ देवी के मंदिर में आदि मातृशक्ति की पूजा-अर्चना होती है। सोहगारा में स्वयंभू-शिव की पूजा मौर्यकाल से होती आ रही है। मेंहदार के मंदिर और पांच सौ बीघा क्षेत्रफल वाला पोखरा नेपाल नरेश विक्रम ने बनवाया था। चैनपुर में कई मंदिर हैं, जहाँ देवी-देवताओं की नियमित पूजा अर्चना होती है। धनौती में कबीर पंथ के प्रसिद्ध वैष्णव भगवान दास का मठ है। थावे में हथुआ नरेश द्वारा निर्मित काली मन्दिर है, जहाँ आज भी चैत रामनवमी को विराट मेला लगता है। कहा जाता है कि यहाँ देवी के परम भक्त रहसु स्वामी के आग्रह पर माँ दुर्गा ने साक्षात् दर्शन दिया था। बैकुंठपुर में महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया था। संत धरनीदास ने यही रहकर रामभक्ति की सरिता बहायी थी। सखी सम्प्रदाय के कामता सखी, अद्वैतवाद के स्वामी अद्वैतानन्द, पार्वती आश्रम के स्वामी शक्ति बालक महाराज, देश-विदेश में योग के प्रचार-प्रसार में संलग्न माँ योगशक्ति और मानव सेवा संघ की भक्तिमती माता देवकी छपरा की ही संतान हैं। 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' की तरह छपरा आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत नर-नारियों से भरा हुआ है। लाटू महाराज उसी चेतना की मुख्य और अद्भुत कड़ी हैं।

लाटू महाराज के बचपन का नाम रखतूराम था। छपरा के जिस गाँव में इनका जन्म हुआ था, उस गाँव का नाम आज तक पता नहीं चल पाया है और न ही उनकी जन्मतिथि ज्ञात है। छपरा तो इतने से ही निहाल है कि ब्रह्मा के अनन्त काल में से किसी काल विशेष में इन्होंने छपरा की धरती पर पहली साँस ली थी। स्थान का नाम और दिनांक लोकव्यवहार के लिये है। यह तो बहुत अच्छा है कि इनकी जन्मतिथि और जन्मस्थली ज्ञात नहीं है। इससे किसी विशेष सीमा में बंधने की विवशता नहीं है। पूरा सारण प्रमंडल (छपरा, सीवान, गोपलागंज) इनकी जन्मभूमि है और सभी दिनांक-तिथियाँ इनका जन्मदिन है। आज तक मात्र इतना ही पता चला है कि ये एक बहुत ही गरीब गड़ेरिया परिवार में पैदा हुए थे।

बचपन में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। रखतूराम के स्वामी अद्भुतानन्द बनने की सीढ़ी तैयार होने लगी। उनके चाचा कोलकाता में कोई काम करते थे। रकटू राम चाचा के साथ कोलकाता गये। कोलकाता में रामचन्द्र दत्त के घर में चाचा ने रखतूराम को घरेलू काम-काज के लिये सेवक रख दिया। दत्तजी के परिवार का वातावरण खूब सात्त्विक था। उन्होंने अपनी चारित्रिक ऊँचाई के बल पर बहुत नाम कमाया था। लोग उन्हें बहुत सम्मान करते थे। रकटू राम लालटू कहलाने लगे। वे सबके प्रिय हो गये। एक ओर उनकी ईमानदारी, सरलता, सहजता और सच्चाई देखकर लोग दंग थे, तो दूसरी ओर उनके सरल निष्कपट प्रेम और निडर वाणी से आश्चर्यचकित थे। स्वभाव ऐसा कि 'न ऊधो का लेना न माधो का देना', अपने काम में मस्त और एकान्तप्रिय।

श्री रामन्द्र दत्त पेशा से डॉक्टर थे और मनोवृत्ति से वैज्ञानिक। न ईश्वर के प्रति पूरी तरह आस्था हो पाती थी और न ही गुरुजी पर पूरा विश्वास हो पाता था। मन का एक कोना हमेशा द्विधा और द्वन्द्व में पड़ा रहता था। मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठती थीं। समाधान के लिए मन विकल हो जाता था। किन्तु किससे पूछें? जायँ कहाँ? तब कलकत्ता के दक्षिणेश्वर में अपने देवी-प्रेम, समाधि, प्रवचन, सरलता, सहजता के लिये श्रीरामकृष्ण परहमहंस प्रसिद्ध थे। उनके यहाँ लोगों का आवागमन होता रहता था। शिक्षित बुद्धिजीवी, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील और निरक्षर सभी प्रकार के लोग वहाँ आकर परमहंस देव से सत्संग करते

और अपनी शंकाओं का समाधान पाकर गद्गद् हो जाते। दिन-पर-दिन आगन्तुकों की संख्या बढ़ती जा रही थी। उसी में एक दिन डॉ. रामचन्द्र दत्त आये और परहंसदेव की वाणी से इतने मुग्ध हुए कि बारबार आने लगे। दत्तजी की दिनचर्या, चिन्तन और क्रिया-कलाप में परिवर्तन होने लगा। मन में सात्त्विकता की जमीन तो थी ही। ठाकुर के संसर्ग और वाणी के खाद-पानी से अध्यात्म के अंकुर फूटने लगे। छूत की बीमारी की तरह पूरा परिवार इस बदलाव की चपेट में आ गया। बालक सेवक लालटू भला संक्रमण से कैसे बचता। साक्षरता नहीं थी, किन्तु पिछले जन्म के संस्कार और इस जन्म के दत्त परिवार का परिवेश निरक्षरता पर भारी पड़ने लगा। दत्तजी के बैठकखाने में मित्रमंडली जुटती। ठाकुर की बातें होतीं। उनकी वाणी का उल्लेख होता, जैसे 'ईश्वर मन से पुकारने पर अवश्य मिलते हैं। ... निर्जन में रो-रो कर ईश्वर को पुकारने पर दर्शन मिलता है। प्रभु बालकवत् सरलता पर रीझते हैं' आदि। बैठक में आते-जाते लालटू के कान में ये बातें पड़ती गयीं और दिल-दिमाग में गोदना की तरह गोदाती गयीं। अंकुर फूटने लगे। मन-मस्तिष्क तो साधना के अनुकूल था ही। लालटू साधक की भूमिका में उतरने लगे। अकेले में बैठ कर रोते। कारण पूछने पर मुँह से कोई वाणी नहीं निकलती। कोई सोचता, अब यहाँ इसका मन नहीं लगता, तो कोई सोचता चाचा की याद आती है। १८७९-८० में एक दिन दत्तजी अपने साथ लालटू को दक्षिणेश्वर ले गये। ठाकुर लालटू को देखते ही बोल पड़े – 'अरे राम ! यह तुम्हें कहाँ मिल गया? इसमें तो साधु के लक्षण हैं। भक्तों से बात करते-करते ठाकुर ने लालटू को छू दिया। लालटू भाव विह्वल हो गये। आँखों से भर-भर आँसू आने लगे। रोंगटे खड़े हो गये, होंठ काँपने लगे। बहुत देर तक ऐसी स्थिति रही। ठाकुर ने इनकी ओर देखकर यह कहते-कहते एक बार फिर उन्हें छू दिया। फिर

क्या था लालटू में वही रोमांच। क्या यह लड़का रोता ही रहेगा? नहीं, वह कुछ सामान्य हो गया। ऊपर से इनकी स्थिति सामान्य हो गयीं किन्तु, भीतर-भीतर बदलाव की प्रक्रिया तेज हो गयी। ठाकुर की छूअन पकड़ बन गयी। लालटू दत्तजी के घर तो लौट कर आ गये, किन्तु उनका मन दक्षिणेश्वर में ही छूट गया। मन और देह की दूरी का दर्द लालटू के हर हाव-भाव, क्रिया-कलाप से झलकने लगा। सब देखते, समझते और कहते थे कि अब लालटू पहलेवाला लालटू नहीं रहा। लालटू जब-तब दत्तजी के साथ दक्षिणेश्वर जाने लगे। जब जाते, तो ठाकुर की छोटी-मोटी कोई-न-कोई सेवा अवश्य करते। किन्तु, उतना ही काफी नहीं था। ठाकुर से अलग होते ही पानी बिना मछली का हाल हो जाता लालटू का। आखिर एक दिन ठाकुर ने दत्तजी से लालटू को माँग ही लिया, "इस लड़के को मेरे पास रहने दो।" ठाकुर को सबकी सेवा स्वीकार नहीं थी। अशुद्ध-असात्त्विक व्यक्ति के छूने से ठाकुर विकल हो जाते थे। लालटू की शुद्धता, सात्त्विकता ठाकुर को रास आती थी। दत्तजी ने लालटू को ठाकुर को सौंप दिया। लालटू जुट गये ठाकुर की सेवा में । ठाकुर स्नेह से लालटू को लेटो, नटो, लाटू आदि कई नामों से पुकारते, जैसे हरि के हजार नाम। उन्हीं नामों में से लाटू नाम अधिक प्रचलित हुआ। लोगों की जुबान पर चढ़ गया। स्वामी विवेकानन्द परिहास में कभी-कभी इनकी दार्शनिकता को रेखांकित करने के लिए इन्हें प्लेटो कहा करते थे। फ्रांसीसी विद्वान रोमां रोला ने पूरब और पश्चिम के भक्तों के सहयोग से ठाकुर की जो जीवनी लिखी है, उसमें १८७९ ई० में दीक्षा प्राप्त सिर्फ चार भक्तों की चर्चा है। जिसमें दत्तजी और लाटू महाराज के नाम भी हैं। ठाकुर की सेवा में आकर लाटू का मन वियोग की पीड़ा से तो उबर गया, किन्तु प्रभु-वियोग की पीड़ा बढ़ गयी। साधना आरम्भ हो गयी। वे अपने गुरु श्रीरामकृष्ण की सेवा में तन्मय हो गये। ठाकुर के मुँह से निकली प्रत्येक वाणी लाटू महाराज के लिए वेद वाक्य हो गया।

लाटू महाराज जैसे ठाकुर की मुरली हो गये। ठाकुर की हर बात को ये पूरी तरह पी जाते थे, पचा जाते थे और फिर ठाकुर का असली सुर निकाल देते थे। वही लय, वही धुन, वही तान। ठाकुर जिस भाव से जो कहते लाटू महाराज के माध्यम से वह अपने सही सटीक अर्थ में अभिव्यक्त होता। ठाकुर ने कह दिया जप, तो जप। कह दिया ध्यान, तो ध्यान। कह दिया कम भोजन, तो कम

भोजन। कह दिया कम नींद, तो कम नींद। कह दिया प्रभु दर्शन के लिए रुलाई, तो रुलाई। कह दिया माँ सारदा की सेवा में जुट जाओ, तो जुट गये। कह दिया माँ सारदा शक्ति की साक्षात अवतार हैं, तो मान लिया। कहा, बैठो तो बैठ गये। कहा, उठो, तो उठ गये। अपनी ओर से न कोई जोड़, न घटाव, न गुणा, न भाग। ठीक वैसे ही जैसे मुरली में जो सुर भरो, जो धुन निकालो, वही निकलेगा। मुरली अपनी ओर से कोई जोड़, घटाव, गुणा भाग नहीं करती। वह केवल स्वामी की इच्छा, मुरलीधर की इच्छापूर्ति करती है और हमेशा समर्पित और खाली रहती है। ऐसे सम्पूर्ण समर्पण और सम्पूर्ण खालीपन के कारण ही मुरली श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय थी। इतनी प्रिय कि कभी अपने से अलग नहीं करते थे। होठ से लगाये रहते थे। हाथ से पकड़े रहते। इसी से ग्वाल-बाल और गोपियों की ईर्ष्या का कारण रही मुरली। किन्तु ईर्ष्या से उपलब्धि नहीं होती। उपलब्धि के लिये कर्म करना पड़ता है। गोकुलवासियों ने श्रीकृष्ण को अपार प्रेम दिया। लेकिन उनकी मुरली नहीं बन सके। अपना मुर (सिर-मैंपन) पूरा-पूरा श्रीकृष्ण के सामने नहीं छोड़ सके। अपने को इतना खाली नहीं कर सके, जितना मुरली बनने के लिए मुरलीधर का सुर निकालने के लिए अनिवार्य है। मुरली एकदम खाली रहती है। एकदम खोखली। कोई बाधा बीच में डाल दी, कुछ फँसा दिया, तो सुर गड़बड़ा जायेगा। लय टूट जायेगी। चाही धुन नहीं निकल पायेगी। श्रीकृष्ण को गोकुल के ग्वाल बाल और गोपियों में मुरली बनने के कुछ तत्त्व जरुर दिखे होंगे। तभी ११ वर्षों तक मुरली बजाकर दिखाया, सुनाया, समझाया कि मुरली बन जाओ। यदि हमारे सन्निकट आना चाहते हो, हमेशा साथ रहना चाहते हो, तो मुरली की धुन पर केवल नृत्य काफी नहीं है। मुरली बंद तो नाच बंद। नाच से एक कदम आगे की बात है मुरली। मुरली रही, तो नृत्य कभी भी शुरू किया जा सकता है। नृत्य एक कदम पीछे की बात है। मुरली एक कदम आगे की। ११ वर्ष का समय कम नही होता। ११ वर्षों तक श्रीकृष्ण ने शायद मुरली बनाने का प्रयास किया। किन्तु कोई बना नहीं। शायद इसी से निराश होकर श्रीकृष्ण गोकुल छोड़कर चले गये और एक संदेश छोड़ गये कि तुम लोग मुरली बन जाते, तो मैं तुम्हें छोड़ कर नहीं जाता कभी। कभी भूलता नहीं। अब भी सोच-समझ लो। बस, मेरी धुन बजाने के लिये खाली हो जाओ, समर्पित हो जाओ। अपना अहं, अपना मैं-पन सब बहा दो, सब निकाल दो। लय हो जाओ मुझमें। खाली हो जाओ मेरे लिए। इतना खाली कि मात्र मेरा धुन रह जाय। बीच में कोई नहीं रहे। कोई विघ्न-बाधा नहीं रहे। गीता में श्रीकृष्ण ने इसी आशय की बात जोर देकर कही है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।१८.६६।।

अर्थात् सभी धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा।

श्रीकृष्ण ने गीता में यह भी कहा है कि जो हमारे सुर ताल-लय की चर्चा करेगा, फैलायेगा, प्रचारित-प्रसारित करेगा, वह मुझे सबसे प्रिय होगा। यानी जो मेरी मुरली बनेगा, वह मुझे परम प्रिय होगा।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।१८.६८।।

प्रभु-मिलन के लिए अपना अहं, अपने मैं-पन के अहंकार को छोड़ने के लिये कबीर दास ने अपने ढंग से संकेत किया है –

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
मुँड़ उतारे, भुंई और तब पैठी एहि माहिं।।
जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं।।
प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचे सीस देइ ले जाय।

लाटू महाराज ठाकुर की मुरली बनने की अपनी अद्भुत क्षमता से अद्भुत संत बन गये। स्वामी विवेकानन्द ने इनके विषय में सारगर्भित सटीक टिप्पणी करते हुए कहा है "ठाकुर को ठीक-ठीक लाटू महाराज ने ही पकड़ा है। हम लोगों ने तो ठाकुर के उपदेशों की मात्र जुगाली की है।" उन्होंने ही इनका नामकरण किया है स्वामी अद्भुतानन्द। यह निर्विवाद है कि ठाकुर की धुन अपनी पूरी शक्ति से, पूरी लय से, पूरे तान से स्वामी अद्भुतानन्द रूपी मुरली से निकली।

इस मुरली ने २४ अप्रैल १९२० ई. को अपना पार्थिव शरीर का आवरण छोड़ दिया, किन्तु मुरली की आन्तरिक धुन आज भी बज रही है, सुनाई पड़ रही है। आगे भी अनन्त काल तक बजती रहेगी, सुनाई पड़ती रहेगी। केवल सुनने के लिए चाहिए कान और गुनने के लिए चाहिए मन। ○○○

टेलीफोन का आविष्कार

वर्तमान समय में मोबाइल के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान अथवा एक देश से दूसरे देश में बात करना आम बात है। केवल बात ही नहीं, वीडियो कॉलिंग के द्वारा हम एक-दूसरे को देखकर भी बात कर सकते हैं। सभी के मन में इच्छा रहती है कि वे दूर-सुदूर अपने स्वजन-परिजन से बात कर सकें। किन्तु एक समय था, जब इस प्रकार की लोग कल्पना ही कर सकते थे। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे, जो अपनी कल्पना को सत्य में परिणत करना चाहते थे। एलेक्जेंडर ग्राहम बैल एक ऐसे ही विद्वान, परिश्रमी और उत्साही वैज्ञानिक थे, जिन्होंने टेलीफोन के अविष्कार द्वारा पूरे विश्व में एक क्रान्ति ला दी।

एलेक्जेंडर का जन्म ३ मार्च, १८४७ को एडिनबर्ग, स्कॉटलैंड में हुआ था। उनका मूल नाम एलेक्जेंडर बेल था। ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने अपने दो नाम के बीच ग्राहम लगाया और उनका नाम एलेक्जेंडर ग्राहम बैल हुआ। एलेक्जेंडर की माँ बधिर थीं। उसके दादा ने गूँगे और बहरे लोगों को शब्द का ज्ञान कराने के लिए अनेक कार्य किए थे। एलेक्जेंडर को विज्ञान में, विशेषकर जीवविज्ञान में बहुत रुचि थी।

बालक एलेक्जेंडर की मित्रता उसके पड़ोसी बॅन हेर्डमैन से हुई। उसके परिवार की एक फ्लोर मील, अर्थात् गेहूँ निकालने की मशीन थी। एलेक्जेंडर इस मशीन की तकनीक के बारे में अपने मित्र से पूछता रहता था। उसका मन सदैव इसमें लगा रहता था कि मशीन के कल-पुर्जे किस प्रकार चलते हैं। १२ साल की आयु में उसने ऐसी ही मशीन स्वयं बना दी थी। उसके घर में इसी मशीन का उपयोग कई वर्षों तक होता रहा।

१५ वर्ष की उम्र में वह स्कूल छोड़कर अपने दादाजी के साथ रहने लन्दन चला गया। इसी समय एलेक्जेंडर को पढ़ाई में बहुत रुचि जागृत हुई। वह घण्टों तक पढ़ाई करने लगा। १६ साल की उम्र में ही वह भाषणकला और संगीत का शिक्षक बन गया। उसने अपने भाई और पिता के साथ मिलकर एक बोलने वाली मशीन बनाई थी। यह मशीन बनाने में उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था।

२३ वर्ष की आयु में एलेक्जेंडर कॅनाडा गए। कुछ महीने बाद उन्होंने एक विशेष स्कूल में गूँगे-बहरे विद्यार्थियों को पढ़ाना शुरू किया। उनके पिता ने एक पुस्तक तैयार की थी, जिसमें बधिर लोगों को भाषाओं को समझाने का प्रयास किया गया था। एलेक्जेंडर ने भी इसका अच्छी तरह अध्ययन किया था।

बधिरों को बोलना-सिखाना एलेक्जेंडर के जीवन का उद्देश्य बन गया था। उनके मन में इच्छा थी कि ऐसी कोई मशीन बनाई जाए, जिससे गूँगे-बहरे लोगों को भाषा समझने में आसानी हो सके। वे लगातार इसके लिए प्रयोग कर रहे थे। उनके पास अधिक धन भी नहीं था और बहुत बार उन्हें ऋण भी लेना पड़ता था।

इन्हीं दिनों एलेक्जेंडर को एक उत्साही सहायक थॉमस वाटसन मिल गए। उन्हें कल-पुर्जों का अच्छा ज्ञान था। एलेक्जेंडर उन्हें जिस किसी भी यन्त्र की ड्राइंग बना कर देते, वाटसन उसे तुरन्त तैयार कर देते।

इतिहास में १० मार्च, १८७६ का दिन महत्त्वपूर्ण दिन था। एलेक्जेंडर ने प्रयोगशाला से अपने घर तक तार बिछा रखे थे और सुबह से ही उनका प्रयोग चल रहा था। उन्होंने अपने सहायक वाटसन को तार के द्वारा सन्देश भेजा, 'वाटसन, यहाँ आओ, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है।'

यह एक ऐतिहासिक सन्देश था, जो प्रथम बार तारों के द्वारा भेजा गया। वाटसन जब यह सन्देश सुनकर एलेक्जेंडर के पास आए, तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। ऐसा कहा जाता है कि एलेक्जेंडर जब प्रयोग कर रहे थे, तब उनके ऊपर एक ज्वलनशील पदार्थ गिर गया और उन्होंने सहायता के लिए अन्य स्थान पर बैठे हुए वाटसन को पुकारा, 'वाटसन, यहाँ आओ, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है।' इस प्रकार प्रथम बार टेलीफोन के विषय में आविष्कार हुआ। इसके कई वर्षों बाद विख्यात वैज्ञानिक थॉमस एडिसन ने इसका विकास किया और उसे सार्वजनिक रूप में प्रस्तुत किया। ○○○

आत्मविश्वासी बनो और लक्ष्य ऊँचा बनाओ

प्रिय युवा साथियों ! आज देश में भौतिक उत्थान के बहुत से साधन होने के बाद भी कुछ युवक बेरोजगारी और सही मार्गदर्शन के अभाव में निराशा और अवसाद के शिकार हो जाते हैं। उनका आत्मबल टूट जाता है। उनके चेहरे से प्रसन्नता चली जाती है। कुछ मनोरोगी हो जाते हैं। सदा दुखी रहते हैं। कुछ दुखी होकर कठोर गलत कदम उठा लेते हैं। बड़े शैक्षिक संस्थानों में पढ़नेवाले बच्चे आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध कर बैठते हैं। जब व्यक्ति को लगता है कि मैं कुछ नहीं कर सकता और उसके जीवन में चारों ओर अन्धकार छा जाता है, तब वह ऐसा करता है। किन्तु वह संघर्ष नहीं करता।

जबकि स्वामी विवेकानन्द की अमोघ वाणी अनेक वर्षों से युवकों को आत्मविश्वासी और शक्तिशाली बनने का संदेश देती चली आ रही है।

एक बार किसी ने स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज से प्रश्न पूछा – **जीवन में आत्मविश्वास का संचार कैसे करें?** महाराज ने उत्तर दिया – "जब किसी काम में हम असमर्थ होते हैं, तब अपने से बलवान का सहारा लेते हैं। रुपये की कमी होने पर किसी सेठ से लेते हैं। कहीं लड़ाई-भिड़ाई में कमजोर हुए, तो पहलवान और पड़ोसियों को बुलाते हैं। ठीक ऐसे ही यदि आपको अपने में आत्मबल की कमी लगती हो, तो सबसे अधिक जिसमें बल है, उस परमेश्वर का आश्रय लीजिये और उनसे प्रार्थना कीजिये – **बलमसि बलं मयि धेहि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।**

हे प्रभो ! आप बलस्वरूप हैं, अपना बल मुझमें स्थापित कीजिये। आप तेजस्वरूप हैं, अपना तेज मुझमें स्थापित कीजिये। जैसे निर्बल बलवान का आश्रय लेकर अपना कार्य करता है, वैसे ही सबसे बलवान परमेश्वर का आश्रय लेकर हमें अपनी निर्बलता मिटानी चाहिये।

प्रह्लाद अपने पिताजी से कहते हैं – **न केवलं भवतश्च राजन् स वै बलं बलिना चापरेषाम्।** – पिताजी, सुन लीजिये, केवल मेरा बल ही परमेश्वर नहीं है, आपका बल भी परमेश्वर है और संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, सबका बल परमेश्वर है।

आप में जो निर्बलता है, वह आपका भ्रम है। आत्मबल में जो कमी दिखती है, वह अपने स्वरूप का बोध न होने के कारण दीखती है।... आत्मा अनन्त शक्तिशाली है। हम अपने स्वरूप को याद करें, तो हममें शक्ति-संचार होगा। हम स्वप्न में नयी धरती, नया समुद्र, नये सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र-तारे बनाते हैं। वहाँ तो केवल भावान्तर की प्राप्ति होती है। जैसे एक व्यक्ति पहले अपने को गृहस्थ मानता था, बाद में संन्यासी मानने लगा। कुमारी कन्या विवाह के बाद अपने को पत्नी मानने लगती है। इसे भावान्तर कहते हैं। ऐसे मनुष्य में निर्बलता एक भाव है। आत्मा निर्बल नहीं है। परमात्मा जो सारे जगत का पावरहाउस है, उससे कनेक्शन कट जाने से निर्बल मानने लगता है। अत: ईश्वर के साथ अपना कनेक्शन लूज मत होने दीजिये। उसे बिल्कुल पक्का रखिये। देखिये, आपमें कोई निर्बलता नहीं है, आप सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत सबमें जीवित रहते हैं। आप इन्हें छोड़कर, इन्हें पकड़कर जीवित रहते हैं। आपमें किसी प्रकार के बल की कमी नहीं है। आप भ्रम छोड़ दीजिये, आपमें बहुत बड़ा बल है।

आप अपने लक्ष्य को बड़ा बनाइये। यदि आपने अपना कोई बड़ा लक्ष्य बनाया होता, तो आपका मन छोटी-छोटी बातों से नहीं चिढ़ता। यदि सबसे बड़ा लक्ष्य है, तो चाहे उसका अस्तित्व हो या न हो, हमारे मन में इतनी शक्ति है कि होगा, तो हमें मिलेगा ही और नहीं होगा, तो हम बना लेंगे। केवल अपना उद्देश्य बड़े-से-बड़ा होना चाहिये, छोटा नहीं होना चाहिये।

यदि आप पूरे परिवार को एक रखना चाहते हैं, तो व्यक्ति के व्यवहार पर मत चिढ़िये, **यदि आप राष्ट्र का हित चाहते हैं, तो प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता, दलबन्दी इनके चक्कर में मत पड़िये, नहीं तो आपके मन में वैमनस्य, संघर्ष और युद्ध की सृष्टि होगी।**

इसलिये आपका लक्ष्य सम्पूर्ण विश्व का हित, मानवता का हित होना चाहिये, जैसाकि महात्मा गाँधी का था। आप अपने लक्ष्य को बड़ा कीजिये।"

अत: मेरे प्रिय युवा साथियो ! आत्म विश्वासी बनें, जीवन में सबसे ऊँचा लक्ष्य बनाएँ, सारे विश्व का हित-चिन्तन करें, अपने को शक्तिशाली समझें और सदा प्रसन्न रहते हुए लक्ष्य प्राप्ति हेतु संघर्ष करें, अवश्य विजयी होंगे।

OOO

भगवान किसे मिलते हैं?

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

भगवान किसको मिलते हैं? जो व्यक्ति उनके लिये सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्म करता हुआ तत्परायण होकर, उनके प्रति अनन्य निष्ठावान रहता है, जो विषय-वासना-आशारहित, निर्वैर और उनका भक्त है, उसे भगवान की प्राप्ति होती है। हम अपने जीवन में किसे परम श्रेष्ठ मानते हैं? हममें से बहुत-से लोग अपने सांसारिक दैनिक व्यवहार के कर्मों को ही वरीयता देते हैं और उसे श्रेष्ठ मानते हैं। किन्तु यदि हम भगवान को चाहते हैं, तो हमें भगवान को ही सर्वश्रेष्ठ मानना होगा। उन्हें महत्त्वपूर्ण समझना होगा। ऐसा न सोचें कि इसे बुढ़ापे में करेंगे। मृत्यु कब आ जायेगी, इसे कौन जानता है? साधक-साधिका को मृत्यु का स्मरण रखना है, जो बिना सूचना के कभी भी आ सकती है। यह जीवन का सत्य है।

साधक को सेवापरायण होना चाहिये। सेवा अपने घर से आरम्भ करनी चाहिये। घर के अन्य सदस्यों को पहले सुविधा देनी चाहिए। अपनी सुविधा सबसे अन्त में लें। ये साधना होगी। सांसारिक लोगों की चिन्ता न करें। क्योंकि जितना आधिक संसार की चिन्ता करते हैं, उतना अधिक हम सांसारिक ही होते जाते हैं। उसे ही महत्त्व देने लगते हैं। जिसको अधिक महत्त्व देते हैं, उसके ही परायण हो जाते हैं। इसलिये हमें परिवार के प्रति कर्तव्यों का पालन करना है, किन्तु चिन्तन भगवान का करना है। महत्त्व भगवान को देना है। जीवन में सर्वश्रेष्ठ भगवान को समझना है। भगवान कहते हैं, यदि मुझको ही परम श्रेष्ठ समझोगे, तो संसार में कर्तव्य पालन तो करोगे, किन्तु उसके प्रति आसक्ति कम हो जायेगी। भगवान को जीवन का केन्द्र बनाने से कर्म के बीच में भी भगवद्भाव सदा जाग्रत रहेगा। सभी कार्यों में बार-बार भगवान की स्मृति होगी। तब हमारा विवेक जाग्रत होगा। हम आवश्यक कर्तव्य ही करेंगे और सदा भगवान से जुड़े रहेंगे। जब आप भगवान को सर्वश्रेष्ठ समझेंगे, जब आप भगवान के लिये कर्म करेंगे, संसार से अनासक्त रहेंगे, तब सारी बुरी चीजें चली जायेंगी और आप संसार में सुखी रहेंगे।

आनन्द किसी भी सांसारिक वस्तु में नहीं है। आनन्द केवल भगवान में ही है। साधक-साधिका को किसी के प्रति द्वेष, घृणा, वैर नहीं रखना चाहिए। यह बात अपने मन से निकाल देनी चाहिए कि हम किसी पर उपकार कर रहे हैं। हमें उपकार के बदले सेवा का भाव अपने मन में लाना चाहिए। सेवा भी निष्काम भाव से करने का प्रयत्न करना चाहिये।

हम सुनते तो बहुत कुछ हैं, किन्तु जीवन में उसका आचरण नहीं करते हैं। आध्यात्मिक जीवन में सुनने के बाद आचरण में लाना बहुत आवश्यक है। अपने जीवन के आध्यात्मिक निर्माण के लिये सभी बातों में हम ही उत्तरदायी हैं। बंधन और मुक्ति हमारे ही हाथ में है। हम अपने मन के कारण ही गड्ढे में गिर जाते हैं और उसी की सहायता से वहाँ से निकल जाते हैं। अत: हमें सुने हुए उपदेशों का चिन्तन करना चाहिये और उसे आचरण में लाने का अभ्यास करना चाहिये।

भक्त को यह सोचना चाहिये कि हमारे इष्ट, हमारे ईश्वर हमारे भीतर हैं और सभी प्राणियों के हृदय में भी वे ही विराजमान हैं। इसलिये सबसे प्रेम और सद्व्यवहार करना चाहिये। दूसरी बात, हम अन्य लोगों से अपेक्षा रखते हैं और जब हमारे अनुकूल उन अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती, तो हमारा उनलोगों से द्वेष और विवाद हो जाता है। जबकि साधक-जीवन में द्वेष-घृणा और विवाद बहुत हानिकारक हैं। इन सांसारिक प्रपंचों के कारण भगवान की बिल्कुल याद नहीं आती। इसलिये भगवान से हमें दूसरों से प्रेम करने और सहिष्णु बनने की शक्ति माँगनी चाहिये। उनसे बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये। सहने की शक्ति भगवान देते हैं। संकट के समय, सुख-दुख में यही सोचना चाहिए कि हमारे भीतर बहुत बड़ी शक्ति है, वही हमारी रक्षा करेगी। भगवान पर पूरा विश्वास करें। यदि हम ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करेंगे, तो मुक्ति मिल जायेगी। हमें प्राप्त वस्तुओं में, व्यवस्था से सन्तुष्ट रहना चाहिये। संतोष बहुत बड़ा गुण है। यदि प्राप्त सुविधाओं से आप संतुष्ट नहीं हैं, तो स्वर्ग का सुख भी आपको संतुष्ट नहीं कर सकता। यह असन्तुष्टि आपके बंधन का कारण बनेगी। सहनशील और संतुष्ट रहें। ईश्वर प्राप्ति का पहला कदम है स्मरण, मनन, बाकी सब व्यवस्था भगवान ही कर देते हैं। भगवान पर पूरा विश्वास रखें। ○○○

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (१४)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

विश्वास के लिये सदा चमत्कार की आवश्यकता नहीं होती

ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज स्वामी विवेकानन्द जी के अन्तिम जीवित शिष्य थे। सितांशु महाराज उनका अत्यन्त आदर करते थे। जब सितांशु महाराज ज्ञान महाराज से मिले, तब वे वृद्ध हो चुके थे। ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज के संतत्व और आदर्श जीवन के कारण रामकृष्ण संघ के सभी साधु उनका बहुत सम्मान करते थे।

ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज

संघ के सभी कनिष्ठ एवं वरिष्ठ संन्यासियों से ज्ञान महाराज समान रूप से मित्रवत् व्यवहार करते थे। यह उनका एक विशेष गुण था। साधु लोग उनसे नि:संकोच बातें करते थे। एक दिन सितांशु महाराज ने उनसे कहा, ''महाराज, हमारे शास्त्रों में चमत्कारों की बातें हैं। क्या आप मुझे कोई चमत्कार दिखा सकते हैं? यदि मैं चमत्कार देख लूँ, तो शास्त्रों पर मेरा विश्वास दृढ़तर हो जायेगा।''

महाराज किसी भी प्रकार से सहमत नहीं हुए । किन्तु सितांशु महाराज भी नहीं मान रहे थे। वे महाराज को किसी भी प्रकार से छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। अन्तत: ज्ञान महाराज ने कहा, ''मेरे पास कोई सिद्धि नहीं है, जिससे मैं चमत्कार दिखा सकूँ और न ही मैं उस प्रकार की सिद्धियाँ चाहता हूँ।''

सितांशु महाराज ने कहा, ''महाराज, आज बहुत गरमी है ! यह ग्रीष्म ऋतु है । बहुत दिनों से वर्षा भी नहीं हुई है और आज सुबह मुझे मिशन के कार्यालय सम्बन्धी कार्य के लिए कोलकाता जाना है। यदि आज वर्षा होती है, तो मैं उसे चमत्कार मानूँगा।''

महाराज ने उत्तर दिया, ''श्रीरामकृष्ण की इच्छा होगी, तो बरसात होगी !''

सितांशु महाराज का कोलकाता में कार्य पूरा होने तक दोपहर ढल चुकी थी। जब वे बेलूड़ मठ वापस आने के लिए बस पकड़ रहे थे, तभी मुसलाधार बारिश शुरू हो गयी। ऐसी तेज बारिश हुई कि कुछ ही मिनटों में कोलकाता की गलियों में कुछ इंच पानी जम गया। जब सितांशु महाराज बेलूड़ मठ पहूँचे, तब सन्ध्या हो चुकी थी। वापस आने पर उन्हें स्मरण हुआ कि उन्होंने ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज से वर्षा के लिए आग्रह किया था। बारिश तो हुई, लेकिन सितांशु महाराज के मन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने सोचा, ''लगता है बारिश किसी अन्य कारण से हुई है।''

सत्यसंकल्प की चार घटनाएँ

स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज (१९०६-१९९६) के प्रति मेरा बहुत आदर था। वे एक आदर्श संन्यासी थे। मैं उनसे शिलाँग आश्रम में तीन वर्षों तक घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। एक बार शिलाँग आश्रम के बहुत-से संन्यासी असम राज्य के कामरूप जिले के रंगीया में बाढ़ राहत-कार्य के लिए गये थे। मैं भी उनमें से एक था। राहत कार्य पूरा हो चुका था और हम शिलाँग आश्रम में वापस आने की तैयारी कर रहे थे । तब स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज राहत-शिविर में आये। शिलाँग से रंगीया की दूरी लगभग १२० किलोमीटर है। हम छह साधुओं को शिलाँग वापस जाने के लिए आधी दूरी ट्रेन से और आधी दूरी बस से तय करनी थी। हम जानते थे कि यह यात्रा आरामदायक नहीं होगी। स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज ने कहा, ''कितना अच्छा होता, यदि कोई कार लेकर आये और हमें शिलाँग आश्रम पहुँचा दे।''

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, ''यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य का पालन करता है, तो वह जो भी कहता है, वह सत्य हो जाता है।'' स्वामी कृष्णात्मानन्द जी की यह बात

सुनकर मैंने एक संन्यासी से कहा, "स्वामी कृष्णात्मानन्द जी ने हमें कार से शिलाँग ले जाने की इच्छा व्यक्त की है, तो उनकी यह वाणी अवश्य सत्य होगी। मुझे विश्वास है कि कार आयेगी और हमें वापस लेकर जायेगी।"

उन संन्यासी ने कहा – "क्या तुम पागल हो गये हो? यह असम्भव है ! हम लोगों को लेने के लिए यहाँ कौन आयेगा?"

लेकिन उन संन्यासी की बात गलत सिद्ध हुई। असम राज्य विद्युत मण्डल के प्रमुख अभियन्ता श्री श्यामापद चौधरी रंगीया शहर से जा रहे थे। वे उस दिन हम लोगों से मिलने राहत शिविर में आये और स्वेच्छापूर्वक हम सबको अपनी बड़ी जीप में बैठाकर शिलाँग ले गये। इस प्रकार स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज की वाणी सत्य हुई।

एक अन्य घटना शिलाँग आश्रम के एक ब्रह्मचारी महाराज के सम्बन्ध में है। किसी ने उपयोग किया हुआ एक जर्मन कैमरा उन्हें उपहार में दिया था। उन्होंने बड़े उत्साह से एक फिल्म-रोल खरीदी। वे आश्रम के सभी साधुओं का एक सामूहिक फोटो खींचना चाहते थे। तब स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज आश्रम के व्यवस्थापक थे। वे तथा अन्य साधु फोटो के लिए समूह में खड़े हो गये। स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज ने अचानक कहा, "मुझे सन्देह है कि कैमरा एक भी फोटो खींच पायेगा।" फिर भी ब्रह्मचारी महाराज ने अनेक फोटो खींचे और दुकानदार को फोटो बनाने के लिये फिल्म-रोल दी। लेकिन महा आश्चर्य ! एक भी फोटो नहीं आया ! सभी फोटो खाली निकले।

बाद में ज्ञात हुआ कि कैमरा का काले पेपर का अन्दर का भाग ढीला था और वह लेन्स को फोटो लेने में बाधा डाल रहा था। स्वामी कृष्णात्मानन्द जी महाराज की कही गई एक छोटी-सी बात भी सत्य सिद्ध हुई। हमारे संघ में हुई ऐसी अनेक घटनाओं के बारे में मैं जानता हूँ। इस घटना के बारे में भी मुझे कोई आश्चर्य नहीं है।

इस विषय में मैं आपको तीसरा प्रसंग सुनाता हूँ। स्वामी आदिनाथानन्द जी महाराज श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे और हमारे जमशेदपुर आश्रम के सचिव थे। एक दिन एक भक्तिन महाराज से मिलने आयी। वह बहुत दुखी थी। उसने महाराज से कहा, "महाराज, मेरी बिल्ली खो गई है। आशीर्वाद दीजिए कि मेरी बिल्ली वापस आ जाये।"

पूछताछ करने पर महाराज को पता चला कि बिल्ली लगभग एक महीने पहले खो गयी थी। साधारणत: इतने दिन की खोई हुई बिल्ली वापस नहीं आती। लेकिन वह मानने को तैयार नहीं थी। वह महाराज के सामने बैठकर रोने लगी। उसको सान्त्वना देने के लिए महाराज ने कहा, "चिन्ता मत करो, तुम्हारी बिल्ली वापस आ जायेगी।"

महा-आश्चर्य ! कुछ दिनों में वह बिल्ली वापस आ गई। यह एक और प्रमाण है कि सत्यनिष्ठ व्यक्ति द्वारा कहे गये वचन सत्य होते हैं। लेकिन इस घटना से स्वामी आदिनाथानन्द महाराज कठिनाई में पड़ गये। जमशेदपुर के लोग यह सोचने लगे कि महाराज के पास अलौकिक शक्तियाँ हैं। किन्तु महाराज रामकृष्ण संघ के संन्यासी थे, वे ऐसी प्रसिद्धि नहीं चाहते थे।

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी अशेषा-नन्द जी (१८९९-१९९६) श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। यह चौथी घटना उनके बारे में है। स्वामी अशेषानन्द जी महाराज अमेरिका स्थित वेदान्त सेन्टर, पोर्टलैंड, के अध्यक्ष थे। वहाँ पर एक रोचक घटना घटी।

फ्रेन्डरीच दम्पती पोर्टलैंड में रहते थे। उनका एक नौ साल का पुत्र था, वह चल नहीं सकता था। उन लोगों के एक परिचित और सम्भवत: पोर्टलैंड आश्रम के भक्त ने उन्हें सुझाव दिया कि वे अपने रोगग्रस्त पुत्र को स्वामी अशेषानन्द जी महाराज के पास ले जायें। उनके परामर्शानुसार श्रीमती फ्रेन्डरीच अपने पुत्र को महाराज के पास ले गयीं और उनसे अपने पुत्र के लिए प्रार्थना करने के लिए कहा। महाराज ने लड़के की आँखों में देखा और उसे उठाकर ऊपर मन्दिर ले गये। आधे घण्टे के बाद वे दोनों नीचे आये। महाराज ने उसकी माँ से कहा, "चिन्ता मत करो ! यह चलने लगेगा।" बाद में वह लड़का चलने लगा। भविष्य में वह एक संगीतकार बना। मैंने यह घटना सीयेटल आश्रम (अमेरिका) की भक्त श्रीमती शैला गुलराजनी से सुनी थी, जिन्हें स्वयं श्रीमती फ्रेन्डरीच ने इसके बारें में बताया था। **(क्रमश:)**

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत् ।।२१।।

पदच्छेद – *देह-इन्द्रिय-गुणान् कर्माणि अमले सत्-चित्-आत्मनि अध्यस्यन्ति अविवेकेन गगने नीलता-आदिवत् ।*

अन्वयार्थ – **गगने** आकाश में **नीलता-आदिवत्** नीलिमा आदि के समान (ही लोग); **अविवेकेन** अविवेक के कारण **देह-** शरीर (तथा) **इन्द्रिय-** इन्द्रियों (के) **गुणान्** गुणों (तथा) **कर्माणि** कर्मों को **सत्-चित्-** सत् तथा चैतन्य-स्वरूप **अमले** निर्मल **आत्मनि** आत्मा में **अध्यस्यन्ति** आरोपित कर लेते हैं ।

श्लोकार्थ – जैसे आकाश में दिखाई देनेवाली नीलिमा को लोग आकाश का ही रंग मान लेते हैं, वैसे ही लोग अविवेक के कारण देह तथा इन्द्रियों के गुणों एवं कर्मों को सत् तथा चैतन्य-स्वरूप निर्मल आत्मा में आरोपित कर लेते हैं ।

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाऽम्भसः।।२२।।

पदच्छेद – *अज्ञानात् मानस-उपाधेः कर्तृत्वादीनि च, आत्मनि कल्प्यन्ते, अम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथा अम्भसः ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **अम्भसः** पानी के चलन आदि (चंचलता) को, **अम्बुगते** पानी में प्रतिबिम्बित **चन्द्रे** चन्द्रमा में (चलने का गुण कल्पित हो जाता है, वैसे ही) **अज्ञानात्** अज्ञान के कारण **च आत्मनि** आत्मा में **मानस-उपाधेः** मन की उपाधि के कारण (उसमें) **कर्तृत्व-आदीनि** कर्तृत्व आदि की **कल्प्यन्ते** भ्रान्ति होती है ।

श्लोकार्थ – जैसे जल की चंचलता आदि को उसमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का मान लिया जाता है, वैसे ही अज्ञान के कारण मन की कर्तापन आदि उपाधियाँ, आत्मा के गुण के रूप में प्रतीत होती हैं ।

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ।।२३।।

पदच्छेद – *राग-इच्छा सुख-दुःख आदि, बुद्धौ सत्याम् प्रवर्तते, सुषुप्तौ न अस्ति, तत् नाशे, तस्मात् बुद्धेः तु न आत्मनः ।*

अन्वयार्थ – **राग-** आसक्ति, **इच्छा** कामना, **सुख-दुःख आदि** सुख-दुःख आदि (वृत्तियाँ) **सत्याम्** वस्तुतः **बुद्धौ** बुद्धि में **प्रवर्तते** उत्पन्न होती हैं, **सुषुप्तौ** गहरी निद्रा में **तत्** उस (बुद्धि) का **नाशे** लोप हो जाने पर, **न अस्ति** (उनका) अस्तित्व नहीं रहता, **तस्मात्** अतः **तत्** वे **बुद्धेः** बुद्धि की (वृत्तियाँ) हैं, **न तु आत्मनः** न कि आत्मा की ।

श्लोकार्थ - राग-द्वेष, सुख-दुःख तथा इच्छा आदि बुद्धि में उत्पन्न होनेवाली वृत्तियाँ हैं, सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा की अवस्था में बुद्धि के लुप्त हो जाने पर उनका अस्तित्व नहीं रह जाता, अतः ये आत्मा की नहीं, अपितु बुद्धि की (वृत्तियाँ) हैं ।

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ।
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलताऽऽत्मनः ।।२४

पदच्छेद – *प्रकाशः अर्कस्य तोयस्य शैत्यम् अग्नेः यथा उष्णता स्वभावः, सत्-चित्-आनन्द नित्य-निर्मलता आत्मनः ।*

अन्वयार्थ – **यथा** जैसे **अर्कस्य** सूर्य का **स्वभावः** स्वभाव है **प्रकाशः** प्रकाश, **तोयस्य** जल का **शैत्यम्** शीतलता, **अग्नेः** अग्नि का **उष्णता** गर्मी; (वैसे ही) **आत्मनः** आत्मा का (स्वभाव है) **सत्-चित्-आनन्द** सतत, चैतन्य, आनन्द और **नित्य** नित्य **निर्मलता** निर्मलता ।

श्लोकार्थ – जैसे सूर्य स्वभाव से ही प्रकाशमान है, जल शीतल है और अग्नि गरम है; वैसे ही आत्मा स्वभाव से ही सत्, चैतन्य, आनन्द-स्वरूप और नित्य निर्मल है ।

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ।।२५।।

पदच्छेद – *आत्मनः सत्-चित्-अंशः च बुद्धेः वृत्तिः इति द्वयम् संयोज्य च अविवेकेन जानामि इति प्रवर्तते ।*

अन्वयार्थ – **आत्मनः** आत्मा के **सत्-चित्-अंशः** सत् एवं चित् अंश **च** और **बुद्धेः वृत्तिः** बुद्धि की वृत्ति – **इति द्वयम्** इन दोनों के **संयोज्य** जुड़ जाने पर **च** और **अविवेकेन** अविवेक के फलस्वरूप **जानामि** 'मैं जानता हूँ' – **इति प्रवर्तते** ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ।

श्लोकार्थ - आत्मा के सत्-चित् अंश और बुद्धि-वृत्ति – इन दोनों के अविवेकपूर्वक जुड़ जाने पर – 'मैं जानता हूँ' – यह वृत्ति उत्पन्न होती है ।

श्रीसीता देवी से श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी निखिलात्मानन्द
रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(गतांक से आगे)

सखियों ने कहा – अरी तुम्हारी यह कैसी अवस्था हो गई? जब तुम हमारे पास से गई, तब भी तुम्हारी आँखों से आँसू बह रहे थे, अब भी तुम्हारी आँखों से जलधारा बह रही है। क्या कारण है तुम्हारे हर्ष का?

तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नैन।

कहु कारनु निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बैन।।१/२२८

उसकी दशा देखकर सखियाँ मधुर वाणी में पूछती हैं – अरी सखी क्या हुआ तुझे? इतना आनंद कहाँ से मिला? तेरे अंग पुलकित और आँखों से आँसू झर रहे हैं। क्या बात है? वह सखी कहती है – सखी ! अगर तुम्हारा पात्र छोटा हो और उसे अमृत से लबालब भर दिया गया हो, तो अमृत छलेकगा कि नहीं? अरी सखी ! यह जो निकल रहा है न, वह आँसू नहीं है, वह तो अमृत है, वही अमृत छलक रहा है। सखियों ने कहा – अरी, जब तू गई थी, तब भी तो तेरी आँखों से जल निकल रहा था। उस सखी ने कहा – हाँ सखी ! जल इसलिए निकल रहा था कि मुझे मालूम था मुझे अमृत मिलने वाला है। अरे, बर्तन में खारा जल भरा हो और पता लगे कि हाँ अमृत मिलने वाला है तो खारे जल को पहले खाली करना होगा कि नहीं? मैं जानती थी आज मुझे अमृत मिलने वाला है, इसलिये पहले मैं अपने बर्तन के खारे जल को निकाल रही थी।

साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ,

नयन-कमल कल कलस रितौ री।। गीतावली, ७७.२

अरे, भगवान का जो साँवरा स्वरूप रूपी अमृत है, उसे भरने के लिये अपने नेत्र-कमल रूपी कलशों को खाली करना पड़ेगा कि नहीं? किन्तु अब यह पात्र खारे जल से नहीं, अमृत से भरा हुआ है। आगे सखी कहती है –

देखन बागु कुअँर दोइ आए

बय किसोर सब भाँति सुहाए।।

स्याम गौर किमि कहौं बखानी।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।१/२२८/१,२

अरे क्या कहूँ सखी? बाग देखने दो राजकुमार आये हुए हैं। एक श्याम वर्ण के हैं और दूसरे गौर वर्ण के। इससे अधिक मैं वर्णन नहीं कर सकती, क्योंकि वाणी के पास नेत्र नहीं हैं और नेत्र के पास वाणी नहीं है। मैं कैसे उनका वर्णन करूँ। सखी वेदान्त की भाषा बोलती है।

नेत्रों ने उन्हें कैसे देखा। मन नेत्र के साथ युक्त होकर उसे देखकर बुद्धि के पास ले जाता है और बुद्धि उसे वाणी के पास ले जाती है, तब वाणी उसका वर्णन करती है। मैं उनका वर्णन इसलिए नहीं कर सकती, क्योंकि जो मन बुद्धि के पास ले जाता है, वह मन उन्हें देखकर उन्हीं के चरणों में ही रह गया। तो वाणी भला कैसे वर्णन कर सकती है? जब भगवान को पाने के लिए हृदय में व्याकुलता होती है, तो गुरु अपने आप ही चले आते हैं। जिस सखी ने श्रीराम का दर्शन किया, वह मानो गुरु के रूप में इनके पास पहुँची –

सुनि हरषीं सब सखी सयानी।

सिय हियँ अति उत्कंठा जानी।। १/२२८/३

उसे देखकर सारी सखियाँ प्रसन्न हो जाती हैं। सीताजी के भी मन में बड़ी उत्कंठा जागती है। सीताजी तुरन्त उसे आगे कर देती हैं – चलो, तुम आगे चलकर हमलोगों को भी ले चलो कि कहाँ तुमने राजकुमारों को देखा है –

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई।

प्रीति पुरातन लखइ न कोई।। १/२२८/८

यह प्रिय सखी मानों गुरु के रूप में ईश्वर को प्राप्त कराने के लिये आगे चल रही है। एक अद्‌भुत बात लिखते हैं गोस्वामी जी – प्रीति पुरातन लखइ न कोई, पुरातन प्रीति है। ब्रह्म और शक्ति उनका मिलन आज थोड़े हो रहा है। ये तो अनादिकाल से एक-दूसरे के लिये हैं। इसीलिए सीताजी सखी को आगे कर देती हैं कि अगर श्रीराम के पास पहुँचने के लिये मैं आगे चलूँगी, तो मुझे कोई समय लगेगा ही नहीं। हमारा परिचय अभी का थोड़े है। वह तो जन्म-जन्मान्तर का परिचय है। इसीलिये लोकशिक्षा हेतु गुरु रूप में सखी को आगे कर देती हैं।

हमने पहले बताया था कि श्रीरामकृष्ण देव ने कैसे सारदा का परिचय दिया था। उन्होंने अपने भाई रामेश्वर से कहा था – जयरामबाटी में रामचन्द्र मुखोपाध्याय के यहाँ मेरे लिए कन्या चिन्हित करके रखी हुई है। इसी प्रकार सारदा भी श्रीरामकृष्ण का परिचय देती हैं।

एक बार श्रीरामकृष्ण देव शिहड़ ग्राम में गए थे। वहाँ सारदा की माता श्यामासुंदरी देवी भी सारदा को लेकर गई थीं। उस समय सारदा की उम्र केवल साढ़े तीन साल थी। श्रीरामकृष्ण देव अन्य युवकों के साथ बैठे हुए थे। कीर्तन का कार्यक्रम चल रहा था। ऐसे में गाँव की एक महिला ने सारदा से कहा – अरी सारू, तू इनमें से किसके साथ विवाह करना चाहेगी? उस साढ़े तीन साल की बालिका सारदा ने तुरन्त श्रीरामकृष्ण की ओर अंगुली दिखाते हुए कहा था – इनके साथ। गाँव की महिलाओं को तो बड़ा आश्चर्य और आनन्द होता है। इतनी छोटी-सी बालिका इतने युवकों में से केवल श्रीरामकृष्ण देव की ओर इंगित कर रही है। इसका तात्पर्य क्या है? ब्रह्म और शक्ति का मिलन अभी का नहीं है, अनादि काल से है। ऐसे ही श्रीराम और सीताजी का मिलन तथा श्रीरामकृष्ण और सारदा का मिलन त्रेतायुग और कलियुग में नहीं, अनादिकाल से है।

गुरु के रूप में वह सखी सबको लेकर वहाँ पहुँचती है, जहाँ उसने श्रीराम और लक्ष्मण को देखा था। देखती है, वहाँ से श्रीराम और लक्ष्मण चले गये हैं। वह कहती है – अरे, यहीं तो देखा था, पता नहीं कहाँ चले गये? अब सीताजी के अन्दर बहुत व्याकुलता होती है।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता।

कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता।। १/२३१/१

व्याकुल होकर सीताजी इधर-उधर देखती हैं कि दोनों राजकुमार कहाँ चले गये। तभी –

लता ओट तब सखिन्ह लखाये। १/२३१/३

लोचन मग रामहि उर आनी।

दीन्हें पलक कपाट सयानी।। १/२३१/७

लता की आड़ से सखियों ने कहा – अरे, देखो वे लोग यहाँ हैं। तब सीताजी तुरन्त भगवान श्रीराम को अपने नेत्रों के दरवाजे से अपने हृदय में ले जाती हैं और पलक रूपी दरवाजे को बंद कर देती हैं। अब अंदर में श्रीराम और जानकीजी हैं। इस तरह से माँ सीता मानों दिखाती हैं कि किस तरह भगवान को प्राप्त किया जा सकता है, कैसी व्याकुलता होने से प्रभु प्राप्त होते हैं।

माँ सारदा कहती थीं, मैं सबकी माँ हूँ, मैं सज्जन-दुर्जन सबकी माँ हूँ। जयरामबाटी में माँ के पास अमजद नामक एक मुसलमान आया करता था, उसका पेशा ही था चोरी करना, डाका डालना। गाँव में उसे कोई पसन्द नहीं करता था। बैठने तक को नहीं कहता था। एक मात्र माँ ही थीं, जो उसे प्रेम से बिठातीं, बातें करतीं, कुछ खाने को देतीं। एक दिन अमजद आया। माँ ने कहा – बेटा अमजद, देख इस छप्पर से पानी चूता है, तू उसे जरा ठीक कर दे। अमजद चढ़कर उसे सुधारने लगा। दोपहर हो आई। माँ ने कहा – बेटा कुछ खाना खा ले। अमजद ने कहाँ – माँ थोड़ा-सा काम बाकी है, उसे करके आता हूँ। घर की महिलाओं ने चिल्लाकर कहा – अरे, तुम कैसे आदमी हो? माँ तुम्हारे लिये बिना खाये बैठी हुई हैं। वह उतरकर आया। माँ से कहता है – माँ ! अभी तक तुमने खाया नहीं? माँ कहती हैं, बेटा जब तक न खाये, क्या माँ खा सकती है? तू बैठ। उसे बिठाती हैं और अपनी भतीजी नलिनी से कहती हैं – इसे खाना परोस। नलिनी चावल लाकर दूर से

पत्तल पर डालती है कि कहीं उसका स्पर्श न हो जाये, क्योंकि वह मुसलमान और चोर भी है। नलिनी के मन में एक उपेक्षा का भाव है। माँ सारदा ने उसका ऐसा आचरण देखकर कहा, – यह क्या कर रही है तू? इस तरह से परोसने से क्या किसी की भूख मिटेगी? तुझे परोसना नहीं आता है। ला, मैं परोसती हूँ। माँ बड़े प्रेम से उसे खाना परोस कर खिलाती हैं। कहती हैं – बेटा, पेट भरकर खाना। जब खाने के बाद अमजद पत्तल समेटने लगा, माँ ने कहा, उसे उठाने के लिये और लोग हैं, जा तू हाथ धो ले। इधर अमजद हाथ धोने के लिये जाता है, घर की महिलाओं ने देखा, माँ स्वयं उसकी जूठी पत्तल उठा रही हैं। चीत्कार करके घर की महिलाएँ कह उठती हैं, अरे तुम ब्राह्मण विधवा होकर मुसलमान का जूठन उठा रही हो! तुम्हारी तो जात चली गई। उस समय की अवस्था के बारे में जरा सोचकर देखिए। सौ साल पहले की घटना है। जात-पात की प्रथा कितनी कठोर, रूढ़ थी। उस समय माँ कहती हैं – अरे क्या हुआ, जैसे शरत मेरा बेटा है, वैसे ही अमजद भी मेरा बेटा है। शरत थे स्वामी सारदानन्द जी, जो श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्यों में से एक थे और यह अमजद, जाति का मुसलमान, लुटेरा और चोर है, पर माँ की दृष्टि में सभी बराबर हैं। इस प्रकार पापी-तापी सब पर कृपा करने माँ सारदा आती हैं।

सीताजी भी सबको समान भाव से ग्रहण करती हैं। जब रावण का वध हो गया, भगवान श्रीराम ने विभीषण से कहा – विभीषण सीताजी को सादर ले आओ। सीताजी को लाने के लिये विभीषण जाते हैं। उस समय राक्षसियाँ सीताजी के पास आकर कहती हैं – देवी! चलिए, हम आपको स्नान करा दें। सीताजी तुरन्त उनके साथ चली जाती हैं। राक्षसियाँ उन्हें स्नान कराती हैं, उनका शृंगार करती हैं। सीताजी के मन में यह भाव है कि अगर अभी मैं राक्षसियों से सेवा लूँगी, तो शायद उन्हें दण्ड न मिले, क्योंकि हनुमान ने श्रीराम को बता दिया था कि इन राक्षसियों ने उन्हें कितना सताया है, कितनी पीड़ा दी है। इससे हो सकता है कि श्रीराम के मन में क्रोध जागे और शायद राक्षसियों को दंडित करें। इसीलिये सीताजी उनकी सेवा लेती हैं, ताकि वे कह सकें कि राक्षसियों ने मेरी सेवा की है, उन्हें दंडित न किया जाये। सीताजी पालकी में बैठती हैं। राक्षस पालकी उठाकर श्रीराम के पास ले जा रहे हैं। वानर दोनों ओर खड़े हैं। सीताजी की एक झलक पाने के लिये वे बार-बार पालकी के पास आते हैं। ये राक्षस लाठी से मार-मारकर उन्हें भगाते हैं – **रक्षक कपि निवारण धाये।** भगवान श्रीराम ने देखा और देखते ही विभीषण जी से कहा – विभीषण मेरी बात मानो जानकीजी से कहो, वे पैदल चलकर आयें, ताकि वानर उन्हें जननी के रूप में देख सकें –

कह रघुबीर कहा मम मानहु।
सीता सखा पयादें आनहु।।
देखहुँ कपि जननी की नाईं। ६/१०७/११-१२

क्या सीता जी की इच्छा नहीं थी कि पैदल चलकर श्रीराम के पास आयें? उनके मन में भी इच्छा थी कि जितनी जल्दी श्रीराम से मिलन हो, पर वे पालकी पर चढ़ राक्षसों की सेवा लेती हैं, ताकि कह सकें कि इन राक्षसों ने मेरी सेवा की है, उन्हें दंडित न किया जाय।

इस प्रकार सीताजी जगत जननी के रूप में आती हैं और माँ सारदा भी जगत जननी के रूप में आती हैं। दोनों अवतारों के बीच में हजारों वर्षों का अन्तराल है, फिर भी समानता के कुछ सूत्रों को देखने का प्रयास किया गया। श्रीराम आते हैं इस युग में श्रीरामकृष्ण के रूप में और सीताजी आती हैं इस युग में सारदा के रूप में। इस युग में आकर माँ सारदा मानों दिव्य मातृत्व भाव का वितरण करती हैं और सबके लिये मुक्ति का द्वार खोल देती हैं। **(समाप्त)**

(टेप से अनुलिखन श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव, इलाहबाद)

भारत की ऋषि परम्परा (१४)

स्वामी सत्यमयानन्द

च्यवन ऋषि

नित्य यौवन, सौन्दर्य और स्वस्थता के रूप में प्रसिद्ध महर्षि च्यवन महर्षि भृगु के पुत्र थे। उनकी माता का नाम पुलोमा था। उनकी जन्म-कथा का सुन्दर वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है। एक दिन महर्षि भृगु स्नान करने के लिए नदी जा रहे थे। उनकी पत्नी पुलोमा उस समय आश्रम में थीं। उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर एक राक्षस ने शूकर के वेश में उनके आश्रम में प्रवेश किया और उनका हरण किया। पुलोमा उस समय गर्भवती थीं और राक्षस का विरोध करते समय उनके गर्भ का अकाल-प्रसव हो गया। नवजात शिशु नीचे गिर गया। शिशु के महातेज से वह राक्षस भस्म हो गया। यह देखकर ऋषिपत्नी पुलोमा चकित रह गईं। उन्होंने धैर्यपूर्वक बड़े प्रेम से बच्चे को उठाया। उसे देखकर उनके नेत्रों से प्रेम और वेदनामिश्रित अश्रु निकल पड़े और वे आश्रम जाने को उद्यत हुईं। महर्षि भृगु भी तब आश्रम पहुँचे। उन्होंने पूरी घटना सुनी और पुलोमा को सान्त्वना दी। अपने पुत्र को उन्होंने आशीर्वाद दिया और उसका नाम च्यवन रखा, अर्थात् जो च्यवित अथवा गिर गया हो। पुलोमा की रक्षा नहीं कर सकने के कारण महर्षि भृगु ने अग्नि को शाप दिया कि उसके सम्पर्क में जो कुछ भी आएगा वह भस्म हो जाएगा। इस प्रकार अग्नि का कार्य दहन-शक्ति के रूप में आरम्भ हुआ।

च्यवन आदर्श बालक के समान उपासना और वेदाध्ययन करते हुए बड़ने लगे। युवावस्था में उन्होंने गहन अरण्य में निवास कर आत्म-चिन्तन करने का निश्चय किया। स्वभाव से ही अन्तर्मुख और नित्य ध्यानाभ्यास के कारण वे शीघ्र ही योग के परमानन्द में निमग्न हो गए। ध्यान में उनकी तन्मयता प्रगाढ़ होती गई। वर्ष बीतते गए। पद्मासन में स्थित च्यवन धीरे-धीरे दीमक और लताओं से आच्छादित होते गए। समाधि के कारण उनमें केवल सुप्त प्राणक्रिया चल रही थी।

एक दिन राजा शर्याति अपनी रानी, पुत्र-पुत्री, मन्त्री और सेवकों के साथ विहार हेतु उस सुरम्य वन पहुँचे। जिस स्थान पर च्यवन समाधि लगाए बैठे हुए थे, उसके आसपास राजा के पुत्र-पुत्री खेलने-घूमने लगे। राजकुमारी सुकन्या ने एक मिट्टी के टीले पर अभूतपूर्व तेज देखा। इसका कारण जानने के लिए वह टीले को मारने लगी। च्यवन की समाधि भंग हुई। वे आसपास देखने लगे और समझ गए कि वे टीले से आवृत हो गए हैं और कोई इसमें व्यवधान उत्पन्न कर रहा है। वे नहीं चाहते थे कि कोई उनकी शान्ति भंग करे, इसलिए उन्होंने राजकुमारी को भगाने के लिए जोर से आवाज की। सुकन्या पीछे हटी और उसने टीले में कुछ चमकते देखा। उसने दो बड़े काँटे लिए और चंचलता के कारण उन चमकती वस्तुओं में डाल दिए। च्यवन चीत्कार कर उठे, क्योंकि वे उनकी आँखें थीं। सुकन्या भय के मारे घबरा गई और अपने डेरे में भाग गई। वह मौन हो गई और उसने निश्चय किया कि वह इस विषय में किसी को कुछ नहीं बताएगी।

च्यवन मुनि ने अपना मन पीड़ा से हटाकर पुन: ध्यान में लगाया। शीघ्र ही सुकन्या की भूल के कारण समस्त राज्य में अपशकुन दिखने लगे। लोग अपच के रोग से व्यथित हो गए। यह व्याधि जानवरों और पक्षियों में भी फैल गई। राजा शर्याति ने अपने सभी मन्त्रियों को बुलाया और इस संकट का कारण पूछा। राजा को बताया गया कि प्रमादवश किसी ऋषि का अनिष्ट किए जाने से उनका यह शाप हो सकता है। राजा ने पूछताछ हेतु सभी आश्रमों में अपने लोग भेजे, किन्तु कुछ पता न लगा। इसी बीच अजीर्ण के कारण लोगो में त्राहि मच गई। सुकन्या भय के मारे अपने भवन में छुपी हुई थी। उसने अपने पिता के पास जाकर पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। शर्याति ने तुरन्त अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा की और सुकन्या को रथ में लेकर उस स्थान पर गए, जहाँ वे वनविहार के लिए रुके थे। राजकुमारी सुकन्या उन्हें उस टीले पर ले गई, जिसमें च्यवन

मुनि ध्यान कर रहे थे। राजा ने टीला तोड़ा और और उनकी विनम्र प्रार्थना से च्यवन सामान्य अवस्था में आए। राजा ने अपनी पुत्री से हुई भूल के लिए क्षमा माँगी और प्रार्थना की कि उनकी प्रजा शापमुक्त हो जाए।

च्यवन मुनि ने कहा कि यदि सुकन्या उनसे विवाह करती है, तो प्रजा पर आया संकट टल जाएगा। यह सुनकर सभी लोग चकित हो गए। च्यवन मुनि का शरीर वृद्ध, कुरूप, जर्जरित था और अब तो उनकी आँखें भी चली गई थीं, जबकि सुकन्या अतीव सुन्दर तरुणी थी। राजा असमंजस में पड़ गए। परिस्थिति को देखते हुए सुकन्या अग्रसर हुई और कहा कि एक महान ऋषि से विवाह करना, उसके लिए गर्व की बात होगी। शर्याति आश्चर्य में पड़ गए, किन्तु इस दुविधा से उन्हें राहत भी मिली। उन्होंने अनिच्छापूर्वक यह प्रस्ताव स्वीकार किया। शीघ्र ही प्रजा का अजीर्ण रोग दूर हो गया और सभी आनन्दित हुए।

च्यवन मुनि का सुकन्या से विवाह हुआ। ऋषिपत्नी सुकन्या ने राजमहल की सभी सुख-सुविधाओं और अपने राज्य-परिजनों का त्याग किया। वे आश्रम में रहने लगीं, जहाँ भोजन एवं अन्य सुविधाओं का अभाव था। ध्यान-उपासना में रत अपने ऋषि-पति के साथ वे एकाकी रहती थीं। किन्तु वे निष्ठापूर्वक अपने पति की सेवा में व्यस्त रहती थीं और उनके पूजा-उपासना सम्बन्धित प्रत्येक कार्य में सहायता करती थीं। नेत्रहीन होने से च्यवन को प्रत्येक कार्य में सहायता की आवश्यकता होती थी और वे शीघ्र ही सुकन्या की अनन्य सेवा से प्रसन्न हो गए थे।

एकबार सुकन्या स्नानोपरान्त नदी से वापस आ रही थीं। उन्होंने अश्विनीद्वय कुमारों को देखा। वे चकित हो गए कि इतनी सुन्दर नारी इस अरण्य में क्या कर रही है। वे सुकन्या के पास गए। सुकन्या उनके दैवी प्रभाव से अभिभूत हो गईं और उन्हें प्रणाम किया।

अश्विनीद्वय स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन के देवता हैं। वे देवताओं के वैद्य हैं। अपनी दिव्य दृष्टि से सुकन्या के विषय में जानकर उन्होंने उनसे कहा कि वे उन दोनों में से किसी एक को अपना पति चुने और अपने नेत्रहीन और वृद्ध पति का परित्याग करे। सुकन्या यह सुनकर चकित रह गईं और प्रबल असहमति जताई। अश्विनीकुमारों ने उनसे कहा, 'हम देवताओं के वैद्य हैं और तुम्हारे पति को अपने समान बना सकते हैं। हम उन्हें नेत्रदृष्टि प्रदान कर सकते हैं।' सुकन्या यह सुनकर अवाक् हो गईं। अश्विनीकुमारों ने कहा, 'किन्तु एक शर्त है। अपने पति को यहाँ लेकर आओ। हम तीनों नदी में डुबकी मारेंगे। जब हम बाहर निकलेंगे, तब हम तीनों में से तुम्हें अपने पति च्यवन को पहचानना होगा।' भयभीत होकर सुकन्या आश्रम में दौड़ीं और अपने पति को पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। च्यवन मुनि ने अश्विनीकुमारों का प्रस्ताव स्वीकार किया। सुकन्या अपने पति को उस स्थान पर ले गईं, जहाँ देवता उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। देवताद्वय और च्यवन मुनि ने नदी में डुबकी मारी। जब वे बाहर निकले, तब तीनों पानी में भीगे हुए समान रूप-आकार के दीख रहे थे। वे सुकन्या के सामने खड़े हो गए। वे भ्रम में पड़ गईं। बहुत निरीक्षण के बाद भी उनको अपने पति को चिह्नित कर पाना असम्भव हो गया था। तब उन्होंने नेत्र बन्द कर जगन्माता से प्रार्थना की। उनके आशीर्वाद से वे अपने पति को पहचान सकीं।

च्यवन मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गए और उन्होंने अश्विनीकुमारों को वर माँगने के लिए कहा। देवताओं ने कहा कि देवराज इन्द्र ने उनको सोमपान का प्रतिबन्ध लगा दिया है और च्यवन मुनि इस बन्धन से उन्हें मुक्त करें। च्यवन ऋषि सहमत हो गए। वे आश्रम गए और उन्होंने सोमयज्ञ आरम्भ किया। उन्होंने सभी देवताओं को यज्ञभाग के लिए निमन्त्रित किया। इन्द्र भी आए और जब उन्होंने अश्विनीकुमारों को देखा, तो उन्होंने उनके सोम-यज्ञभाग पर आपत्ति जताई। च्यवन मुनि देवराज इन्द्र से असमहत हुए। क्रोधित इन्द्र ने च्यवन मुनि पर प्रहार करने के लिए अपना वज्र उठाया। च्यवन ने मन्त्रोच्चार किया और तत्क्षण इन्द्र के अंग स्तम्भित हो गए। उन्होंने यज्ञाग्नि से एक भयंकर मुखाकृति वाले मद को उत्पन्न किया। मद स्तम्भित इन्द्र का वध करने के लिए आगे बढ़ा। इन्द्र ने रक्षा के लिए देवगुरु बृहस्पति को बुलाया। देवगुरु ने इन्द्र से कहा कि वे च्यवन मुनि से क्षमायाचना करें। इन्द्र ने शीघ्र ही क्षमा माँगी, क्योंकि मद उन्हें मारने के लिए पहुँच ही गया था। च्यवन मुनि ने मद का प्रत्यार्वन कर उसे चार भागों में काटकर फेंक दिया। प्रत्येक भाग द्यूत, आखेट, मद्यपान और वेश्यावृत्ति भागों में गिरा। इसलिए कोई भी व्यक्ति जब इन अशुभ कार्यों के सम्पर्क में आता है, तो वे उसे नष्ट कर देते हैं। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व चिन्तन (८/६)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है)

इसीलिए आगे के श्लोक में कहते हैं -

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।५।।

अन्तकाले च (अन्तकाल में भी) य: (जो) माम् एव स्मरन् (मेरा ही स्मरण करते-करते) कलेवरं (देह को) मुक्त्वा (त्यागकर) प्रयाति (प्रयाण करता है) स: (वह) मद्भावं (मेरे भाव को) याति (प्राप्त करता है), अत्र (इस विषय में) संशय: न अस्ति (संशय नहीं है)।

– जो मनुष्य अन्तकाल में भी मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़ जाता है, वह मेरे भाव को (अर्थात् स्वरूप को) प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं ।

यहाँ पर श्रीभगवान कह रहे हैं कि जो अन्तकाल में भी अर्थात् मृत्यु के समय उनका ही स्मरण करता हुआ अपने शरीर को छोड़ता है, वह शरीर छोड़ने के पश्चात् उनके भाव को प्राप्त होता है, अर्थात् उन्हीं के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। प्रभु कहते हैं कि इसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है। कोई कह सकता है, जब भगवान ने ऐसा ही कहा है कि अन्तकाल में कोई साधक मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़ता है, तो वह मुझे ही प्राप्त हो जाता है। तो बाबा ! इतनी सब कठिन साधनाओं की जरूरत क्या है? अन्त समय में भगवान का नाम ले लेंगे, तो हो जाएगा। पर यहाँ भगवान् ने कहा कि अन्तिम समय में भी। उसका तात्पर्य यह है कि जब पहले से भगवान का स्मरण नहीं रहेगा, तो अन्तकाल में स्मरण होना सम्भव नहीं होगा। जो हमारे जीवन के संस्कार होते हैं, वे ही अन्त समय में हमारे सामने आते हैं। यदि ईश्वर के संस्कार पहले से नहीं बने हैं, तो कभी ईश्वर का चिन्तन अन्त समय में नहीं होता। यदि हम क्षर में, अक्षर में और हमारे भीतर जो चलानेवाला बैठा है, उन सबमें ईश्वर की क्रिया को न देखें, उस प्रकार के संस्कार न बनाएँ, तो अन्तकाल में ईश्वर का स्मरण होता ही नहीं है।

एक कथा आती है। एक पिता मर रहा था। रात का समय था। उसने अपने तीनों पुत्रों को पास बुलाया और कुछ कहने की बहुत चेष्टा की। परन्तु बहुत कोशिश करने के बावजूद भी वह कुछ कह न सका। पुत्रों ने सोचा कि सम्भव है, पिता कुछ रहस्यपूर्ण बात बताना चाहते हैं। हो सकता है कि किसी तिजोरी का ठिकाना बताना चाहते हों अथवा धन का पता ही बताना चाहते हों, पर अवश हो कुछ कह नहीं पा रहे हैं। हो सकता है कि भगवान का नाम ही लेना चाहते हों। तब तीनों बड़े परेशान हो गये। उन्होंने एक नामी वैद्य से कहा कि जैसे भी हो, पिता को केवल दो मिनट बोलने हेतु ठीक कर दीजिए। वैद्य ने कहा, 'ठीक है, मैं दो मिनट बोलने हेतु औषधि दे देता हूँ, पर दो मिनट तक यदि न बोल पाए, तो पैसा वापस भी कर दूँगा।' तीनों बेटे तैयार हो गये। तीनों ने मिलकर धन वैद्य को दिया। वे तो धन आदि पाने के लालच में मत्त हो रहे थे। अत: वैद्य की बात को स्वीकार कर लिया। वैद्य ने दवा तैयार की और पिता को चटा दी। अब पिता ने धीरे-धीरे बोलना आरम्भ किया। क्या बोला? उन्होंने कहा कि वह लालटेन जो जल रही है, उसकी बत्ती क्यों इतनी ऊँची जल रही है। जरा नीची कर दो, तेल अधिक जल रहा है। तो दो मिनट में यही सब कहा। बेटों के रुपये भी गये। और सुनने को क्या मिला? यही कि तेल अधिक जल रहा है, बत्ती नीची कर दो। इसीलिए कहा गया है कि अन्तकाले च। उसका अर्थ यही है कि जीवन में यदि हम अभी से ईश्वर का स्मरण करते चलें, तभी अन्तकाल में हमें ईश्वर का चिन्तन बना रहेगा, अन्यथा नहीं।

फिर प्रभु श्रीकृष्ण अर्जुन से अगले श्लोक में कहते हैं –

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित: ।। ६ ।।

कौन्तेय (हे कौन्तेय) अन्ते (अन्तकाल में) यं यं वा अपि भावं (जिस-जिस भी भाव से) स्मरन् (स्मरण करते हुए) कलेवरं (देह को) त्यजति (त्याग करता है) सदा

(सर्वदा) तद्भावभावित: (उस भाव के द्वारा तन्मय होने के कारण) तं तं एव (उस उस भाव को ही) एति (प्राप्त होता है)।

- ''हे कौन्तेय ! (यह मनुष्य) अन्त समय में जिस भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है; सदा उस भाव में तन्मय होने के कारण, उस भाव को ही प्राप्त होता है।''

अर्थात् अन्तकाल में जैसी मति होगी, वैसी ही गति भी होगी। जो भी भाव, जो भी विचार अन्तकाल में बना रहता है, मनुष्य उसी के अनुरूप ही जन्म लेता है। जड़भरत की कथा आती है। राजा भरत जब तपस्या कर रहे थे, तो मृत्यु के समय हिरन के छोटे-से बच्चे में उनका मन लगा रहता था। इसीलिए मृत्यु के बाद वे एक हिरन के रूप में जन्म लेते हैं। इसके माध्यम से मानों हमें यहाँ यह बात बताई गई कि अन्त समय में हमारा मन जहाँ लगा रहता है, जो-जो सोचते हुए हम इस शरीर को छोड़ते हैं, तो उसी के अनुरूप हमें शरीर मिलता है। इसीलिए प्रभु अपने सातवें श्लोक में अर्जुन से कहते हैं –

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।। ७ ।।

तस्मात् (अतएव) सर्वेषु कालेषु (सब समय) माम् (मुझको) अनुस्मर (स्मरण कर) युध्य च (और युद्ध करो अर्थात् स्वधर्म का अनुष्ठान कर), मयि (मुझमें) अर्पित मनोबुद्धि: (मन और बुद्धि अर्पण करके) माम् एव (मुझको ही) असंशयम् (निश्चयपूर्वक) एष्यसि (प्राप्त होगे।)

-''इसलिए तू सब समय मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। (इस प्रकार) मुझमें मन और बुद्धि अर्पित करके तू नि:संदेह मुझे ही प्राप्त होगा।''

भगवान कह रहे हैं कि तू युद्ध भी कर और साथ-ही-साथ सब समय मेरा स्मरण भी कर। तेरा मन, तेरी बुद्धि मुझको अर्पित हो जाएगी और तू मुझे ही प्राप्त होगा। भगवान यह नहीं कहते कि मुझे प्राप्त करने के लिए तू युद्ध छोड़ दे। जैसे अर्जुन के सामने महाभारत का युद्ध था, हमारे सामने भी युद्ध है। हम भी छोटा-मोटा महाभारत युद्ध लड़ रहे हैं। हमारे अन्दर भी सत् और असत् प्रवृत्तियों का युद्ध चला हुआ है। ये हमारे भीतर पाण्डव और कौरव दल हैं। हमें सतत अपने मन और इन्द्रियों से लड़ना पड़ता है। अर्जुन के लिए वह युद्ध था, हमारे लिए भी युद्ध है। अर्जुन का युद्ध भिन्न प्रकार का था। हमारा युद्ध भिन्न प्रकार का हो सकता है। पर ऐसा कौन-सा व्यक्ति है, जिसके शरीर पर, जिसके सिर पर इस महाभारत युद्ध का बोझा नहीं है। हर व्यक्ति के अन्त:करण में यह युद्ध तो चल ही रहा है। भगवान कहते हैं कि तू संग्राम कर। संसार में रहकर तू कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान कर और सतत मेरा स्मरण करता रह। क्या होगा उससे? उससे तेरी बुद्धि, तेरा मन मुझमें अर्पित हो जाएँगे और तू मुझे ही प्राप्त करेगा।

अब आठवें श्लोक में बताते हैं कि इस तरह अभ्यास और एकाग्रचित्त के द्वारा उस परम पुरुष की प्राप्ति होती है –

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।८।।

''पार्थ (हे पार्थ) अभ्यासयोगयुक्तेन (परमेश्वर के पुन: पुन: ध्यान और स्मरण रूप योग से युक्त होकर) न अन्यगामिना (दूसरी ओर न जानेवाले) चेतसा (चित्त से) अनुचिन्तयन् (चिन्तन करते-करते) दिव्यं परमं पुरुषं (दिव्य परम पुरुष को) याति (प्राप्त होता है)।

- ''हे पार्थ अभ्यास रूप योग से युक्त, अन्यत्र कहीं न जानेवाले चित्त के द्वारा चिन्तन करता हुआ, (मनुष्य) दिव्य परम पुरुष को प्राप्त होता है।''

अभ्यासयोग का मतलब क्या है? बार-बार मन भगवान में लगाना। हम दुनिया के काम में लगे हैं और हमारे मन में ईश्वर का चिन्तन रुक गया। फिर हमें बोध आया, अरे ! मैंने ईश्वर-स्मरण खो दिया। तो फिर से मन को प्रभु में लाकर स्थापित करें। हमारा मन फिर भागे, तो उसे पुन: लाकर ईश्वर में स्थापित करना। इसी को अभ्यासयोग कहते हैं। श्रीरामकृष्ण इस विषय में बहुत ही सरल-सा एक दृष्टान्त दिया करते थे, जो हमारे गाँवों में अक्सर देखा जाता है। वे कहते थे कि गाँव की महिला जब ढेकी में धान कूटती है, तो उसका मन अनेक ओर बँटा रहता है। वह बायें हाथ से अपने छोटे-से बच्चे को पकड़कर दूध भी पिला रही है। ग्राहक आता है, तो उससे वह मोल-भाव भी करती है और उससे बकाया रुपया देने को कहती है। इधर अपने बड़े बेटे से कहती है कि उसे इतना सौदा दे दे, इतना गुड़ नाप दे, इतना तेल नाप दे। परन्तु श्रीरामकृष्ण कहते थे कि उस महिला के मन का प्रमुख भाग अपने दाहिने हाथ के ऊपर ही रहता है कि कहीं धान कूटनेवाला मूसल उसके हाथ पर गिर कर उसे चोट न पहुँचा दे। इसी को अभ्यास कहते हैं, जिसके तहत संसार के सब कर्म तो हों, परन्तु मन सदैव ईश्वर में ही लगा रहे। इस उदाहरण के माध्यम से श्रीरामकृष्ण यह दर्शाना चाहते हैं। हमारे विक्षिप्त हुए चित्त को बारम्बार ईश्वर में स्थापित करने का नाम ही अभ्यासयोग है। **(क्रमश:)**

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

८८. क्या तुमने ईश्वर को देखा है?

उपनिषदों के एक प्राचीन ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए एक आचार्य के पास भेजा। शिक्षा पाकर उसके लौट आने पर पिता ने पूछा, "तुमने क्या सीखा?" पुत्र बोला, "मैंने अनेक विद्याएँ सीखीं।" पिता ने कहा, "वह सब कुछ नहीं है; फिर जाकर सीखो।"

पुत्र आचार्य के पास गया और उसके दुबारा लौटने पर पिता ने पुन: वही प्रश्न किया और पुत्र ने भी वही उत्तर दुहराया। उसे एक बार फिर वापस जाना पड़ा। इस बार जब वह लौटकर आया, तो उसका पूरा चेहरा चमक रहा था। पिता उसे देखते ही उठकर खड़े हो गये और बोले, "बेटा, आज तो तुम्हारा चेहरा ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है।"

जब तुम ईश्वर को जान लोगे, तो तुम्हारा चेहरा बदल जायगा, तुम्हारा स्वर और तुम्हारी पूरी आकृति बदल जायगी। तब तुम मानव जाति के लिए एक वरदान बन जाओगे। ऋषि की शक्ति को कोई नहीं रोक सकेगा। यही ऋषित्व है और यही हमारे धर्म का आदर्श है। बाकी सब कुछ – यह वाग्विलास, युक्ति-विचार, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद और यहाँ तक कि वेद भी इसी ऋषित्व को प्राप्त करने तैयारी मात्र तथा गौण हैं। ऋषित्व ही प्रमुख बात है। (५/१४९)

८९. जो भी अपना जीवन बचाने की चेष्टा करेगा

एक धनी युवक ने ईसा से पूछा, "प्रभो, अनन्त जीवन की प्राप्ति के लिए मुझे क्या करना चाहिये?" ईसा बोले, "तुम्हारे भीतर एक ही कमी है। जाकर अपनी सारी सम्पत्ति बेच डालो और उससे प्राप्त धन को गरीबों में बाँट दो। इससे तुम्हें स्वर्ग का खजाना मिलेगा। उसके बाद तुम अपना 'क्रूस' उठाकर मेरा अनुसरण करो।" वह धनी युवक यह सुनकर अत्यन्त उदास हो गया और दुखी होकर लौट गया, क्योंकि उसके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति थी। हम सभी कमोबेश उसी के समान हैं। रात-दिन हमारे कानों में (ईसा की) वही वाणी गूँजती रहती है। हम अपने आनन्द और सुखभोग के क्षणों में सोचते हैं कि हम बाकी सब कुछ भूल गये हैं। परन्तु जब कभी उसमें क्षण भर का भी विराम आता है, तो हमारे कानों में वही वाणी गूँजने लगती है, "अपना सर्वस्व त्यागकर मेरा अनुसरण करो।" "जो अपना जीवन बचाने की चेष्टा करेगा, वह उसे खो देगा; और जो मेरे लिए अपना जीवन खोयेगा, वह अनन्त जीवन प्राप्त करेगा।" (७/२२६-२२७)

९०. महान भारतीय नारियाँ

तुम लोगों में से कुछ ने उस नारी (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई) का नाम सुना होगा, जिन्होंने १८५७ ई. के गदर के समय अंग्रेज सैनिकों के साथ युद्ध किया था। उन्होंने आधुनिक सेनाओं का नेतृत्व और तोपखानों का संचालन किया और सर्वदा सामने रहकर वे अपनी सेना का मार्गदर्शन करती रहीं। दो वर्षों तक मोर्चा सँभाले रखा था। वे रानी एक ब्राह्मण बालिका थीं।

उस युद्ध में मेरे एक परिचित व्यक्ति के तीन पुत्र मारे गये थे। जब वे उनके बारे में बातें करते, तो शान्त रहते; परन्तु जब वे इस रानी के बारे में बोलते, तो उनकी आवाज ... ... वे कहते कि वह एक मानवी नहीं, बल्कि एक देवी थी। उस वृद्ध सैनिक का विचार था कि उन्होंने उससे बेहतर सैन्य-संचालन नहीं देखा।

चाँद बीबी या चाँद सुलताना (१५४६-१५९९) की कहानी भी भारत में सर्वविदित है। वह गोलकुण्डा की रानी थी, जहाँ हीरों की खान स्थित है। वह महीनों तक अपनी रक्षा करती रही। आखिरकार किले की दीवार एक जगह से टूट गयी। जब अंग्रेजों की सेना उसके भीतर घुसी, वह पूरी तरह से जिरह-बख्तर पहने हथियारों से लैस खड़ी थी और उसने आक्रान्ताओं को वापस लौटने को मजबूर कर दिया।[१] (CW, 9:200-201)

१. चाँद बीबी की सैन्य-संचालन क्षमता तथा साहस से उसके सैनिक इतने प्रभावित हुए कि उन लोगों ने उसे चाँद सुल्ताना अर्थात् "चाँद साम्राज्ञी" कहना शुरू कर दिया।

भारतीय चिन्तन की देव-दृष्टि : एक ऐतिहासिक पर्यालोचन

राजलक्ष्मी वर्मा

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(गतांक से आगे)

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जैसे-जैसे बुद्धि का विकास होता है, विस्तार सिमटता है और गहराई बढ़ती है। दिव्यता के अभिज्ञान का दूसरा चरण हमें उपनिषदों में प्राप्त होता है। संहिताकाल में जो दृष्टि एकता की विविध अभिव्यक्तियों में उलझी थी, उपनिषत्काल में वही दृष्टि एकता में विविधता का पर्यवसान कर देती है और सर्वव्यापक सर्वरूप उस परम सत्य के अखण्ड अनुभव' की ओर अग्रसर होती है। दृष्टि में यह परिवर्तन क्यों आया, इसके कई कारण हो सकते हैं। एक कारण तो यह है कि विकसित होने के क्रम में बुद्धि सहज रूप से स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करती है। किन्तु एक और महत्त्वपूर्ण कारण कि वैदिक धर्म की ऋजुता और सहजता कर्मकाण्ड के विस्तृत आतान-वितान के नीचे दबती चली गयी। देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त धन-धान्य का जो अंश उन्हें यज्ञरूप में समर्पित किया जाता था, वह यज्ञ स्वयं देवता का रूप ले बैठा। देवताओं की सत्ता गौण होने लगी और वैदिक धर्म में व्ययसाध्य निष्प्राण क्रियाकलाप की प्रधानता हो गयी, फलत: व्यक्ति और समाज को धर्म से जो सान्त्वना, सन्तोष और मार्गदर्शन मिलता था, वह समाप्तप्राय हो गया और व्यष्टि-चेतना और समष्टि-चेतना के बीच विकसित होता पारस्परिक सद्भाव धूमिल होने लगा। इन स्थितियों ने एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक क्रान्ति की भूमिका बना दी।

भारतीय चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह युगानुकूल आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं अपना संशोधन करता है। भारतीय धर्म और दर्शन, दोनों का इतिहास इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है। यही उसकी निरन्तरता और दीर्घजीवन का रहस्य है कि वह भी प्रकृति की भाँति नया होता रहता है। वैदिक धर्म के निष्प्राण होते कर्मकाण्ड का विरोध करनेवाले जैन और बौद्ध मत तो बाद में प्रभावी हुए, असहमति का प्रथम स्वर तो ऋषियों के कण्ठ में ही उभरा । उपनिषदों ने वैदिक यज्ञों की प्रतीकात्मक व्याख्याएँ ही नहीं कीं, अपितु स्पष्ट स्वर में स्थूल क्रियाओं की अपेक्षा चिन्तन और आत्मसाक्षात्कार का महत्त्व प्रतिपादित किया । बाह्यक्रिया की अपेक्षा आन्तरिक रूपान्तरण पर बल दिया और त्याग-तपोमय जीवनचर्या के द्वारा अन्त:प्रकृति और बाह्यप्रकृति में व्याप्त दिव्य चेतना की साक्षात् अनुभूति को ही धर्म का वास्तविक रूप और मानव-जीवन का लक्ष्य स्वीकार किया। भारतीय परम्परा वेदों को नित्य और अपौरुषेय स्वीकार करती है, वे परमात्मा के नि:श्वासभूत हैं, अत: वेदों द्वारा प्रतिपादित किसी भी सत्य या तथ्य का प्रत्याख्यान सम्भव नहीं है; और फिर उपनिषद स्वयं वैदिक परम्परा का ही अंग हैं तथा वैदिक चिन्तन का चूडान्त निदर्शन माने जाते हैं । अत: उपनिषदों के द्वारा जिस वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, वह अपने स्वरूप में विध्वंसात्मक न होकर संशोधनात्मक था। उन्होंने वैदिक धर्म में स्वीकृत देवशक्तियों और उनकी उपासना का निषेध नहीं किया, केवल वे सभी जिस दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति हैं, उसके बोध और अनुभूति पर बल दिया। इस तरह वैदिक धर्म में दो प्रस्थान बने – कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड तथा रुचिभेद और अधिकारीभेद से प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग के रूप में समाज में प्रचलित रहे। कालान्तर में इनके समन्वय के भी सार्थक प्रयास हुए, श्रीमद्भगवद्गीता इसका सुन्दर उदाहरण है।

उपनिषत्काल में ईश्वरविषयक चिन्तन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उपनिषदों की शब्दावली परमात्मा या परमसत्ता के लिए जिन दो संज्ञाओं का प्रमुख रूप से प्रयोग करती है, वे हैं 'आत्मा' और 'ब्रह्म'। ये दोनो संज्ञाएँ व्यक्तिवाचक न होकर स्वरूपवाचक हैं। 'आत्मा'

शब्द **'अत् व्यापने'** धातु से बनता है, जिसका अर्थ है 'व्यापनशील'। वह तत्त्व जो सर्वत्र व्याप्त है अर्थात् सृष्टि का आन्तरिक स्वरूप है, सारतत्त्व है, वही 'आत्मा' है। दूसरी संज्ञा है 'ब्रह्म', यह 'बृह् बृंहणे' धातु से निष्पन्न है। बृंहण का अर्थ है विस्तार, विवृद्धि, फैलाव या परिणमन (मल्टीप्लिकेशन); जो तत्त्व इस सृष्टि के रूप में व्यक्त होता है, परिणमित होता या भासित होता है, यह सृष्टि जिसका बृंहण अर्थात् विस्तार है, वही तत्त्व 'ब्रह्म' है। इस तरह जो सृष्टि का नामरूपात्मक बाह्य कलेवर भी है और उसका आन्तरिक स्वरूप भी है, वही सर्वोच्च और परम सत्य है। यही तत्त्व सम्पूर्ण जगत का अधिष्ठान भी है, सृष्टि इसमें ही स्थित है, जैसे मिट्टी से बना घड़ा मिट्टी में ही स्थित होता है। यह ब्रह्म या आत्मा सृष्टि के बाहर भी है, भीतर भी है और उसे चारों ओर से आच्छादित किये हुए है, इसी बात की उद्घोषणा ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में की गयी है – **'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'** सन्त कबीर के सीधे-सादे शब्दों में कहें, तो **'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।'** स्पष्टत: ऐसा तत्त्व निर्गुण और निराकार ही होगा, उसका अपना कोई नाम-रूप-गुण-धर्म, विशेषण, देश और काल हो ही नहीं सकता, अन्यथा वह सर्वव्यापक और सर्वरूप नहीं हो सकेगा, सीमित और विकारी हो जायेगा। अत: उपनिषद इस तत्त्व को अजन्मा, अविनाशी और कालातीत स्वीकार करते हैं, किन्तु इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि गुण, धर्मरहित होने के कारण यह अभाव रूप है, क्योंकि अभावरूप होने पर इससे सृष्टि नहीं हो सकती। उपनिषद इसका स्वरूप सत्, चित् और आनन्द बतलाते हैं। सत्, चित् और आनन्द इसके गुण या धर्म नहीं हैं, अपितु स्वरूप ही हैं। परमात्मा अमिश्रित चेतना है, इसमें भेद या द्वैत नहीं है। सत् का अर्थ है नाम-रूप से रहित शुद्ध, सत्ता, चित् का अर्थ है ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की 'त्रिपुटी' से रहित शुद्ध ज्ञान और आनन्द का अर्थ है मन-इन्द्रियों के सन्निकर्ष की अपेक्षा न रखनेवाला विषय-विषयी भेद से रहित विशुद्ध आनन्द।

यह तत्त्व त्रिगुणात्मिका प्रकृति से सर्वथा भिन्न है। इसमें प्रकृति के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध धर्म नहीं हैं – **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्'** (कठ. १/३/१५), इसलिए प्रकृति के द्वारा निर्मित इन्द्रिय, मन और बुद्धि इसे ग्रहण नहीं कर पाते और जब ग्रहण नहीं हो पा रहा है, तो वाणी वर्णन कैसे करे? **'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा...'**(मुण्डक ३.१.८)। इसलिये इसे अतीन्द्रिय, अज्ञेय, अप्रमेय और अव्याख्येय कहा जाता है। प्रश्न उठता है, फिर इसके अस्तित्व में प्रमाण क्या है? उत्तर है स्वानुभूति, अर्थात् स्वयं अपना, अपने होने का अनुभव। यह विशुद्ध चेतना ही व्यक्ति का अपना स्वरूप है। किसी भी व्यक्ति को अपने अस्तित्व पर सन्देह नहीं होता और 'वह है'– इसे प्रमाणित करने के लिए उसे किसी प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। यह अवश्य है कि वह स्वयं को सही-सही नहीं जानता, उसका आत्मबोध इन्द्रिय, मन, बुद्धि और उससे भी पहले शरीर की संवेदना से आच्छादित या मिश्रित रहता है। कहा जा सकता है कि व्यक्ति स्वयं को – अत: परमात्मा को भी न जानते हुए भी जानता है और जानते हुए भी नहीं जानता। यही भ्रान्ति का स्वरूप है, जिसका निवारण ज्ञान के द्वारा होता है।

इस प्रकार उपनिषदों ने चिन्तन के क्षेत्र में अद्भुत क्रान्ति उपस्थित की, जहाँ एक ओर असीम और ससीम चेतना अर्थात् ईश्वर और मनुष्य के बीच मूलभूत एकता और अभिन्नता प्रतिपादित की, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के साथ भी मानव की आन्तरिक एकता सिद्ध की। परम सत्य की यह धारणा भारतीय मनीषा की सर्वोच्च उपलब्धि है। समस्त चिन्तन प्रक्रिया की तार्किक परिणति भी इसी धारणा में हो सकती है, किन्तु मन-बुद्धि से अतीत ईश्वर का यह निर्गुण रूप शरीर और इन्द्रियों के धरातल पर जीने वाले सामान्य मनुष्य के अनुभव से परे है। जन्म-जन्मान्तर की वासनाओं और कामनाओं की ग्रन्थियों में कसे हुए सांसारिक मन का परिष्कार उस अद्वयानुभूति से नहीं हो सकता, जिसके अनुभव की क्षमता ही उसमें न हो। मनुष्य की इस दयनीय असमर्थता की ओर निश्चय ही ऋषियों का ध्यान गया होगा, तभी तो उन्होंने परमसत्य की सर्वव्यापकता और सर्वरूपता का आश्रय लेकर उसके 'सगुण रूप' की भी प्रस्तावना की। उपनिषदों में यद्यपि प्रधानता तो सत्य के निर्गुण-निराकार रूप की ही है, तथापि यत्र-तत्र उसके सविशेष-सगुण रूप के संकेत भी उपलब्ध हैं। उपनिषद् इस तत्त्व को 'रसरूप' अर्थात् आनन्द रूप कहते हैं। समस्त प्राणी इस रस को प्राप्त करके ही आनन्दित होते हैं। आकाश के समान व्यापक यह परमात्मा यदि रसरूप न होता, तो भला कौन जीवित रह सकता था? यह परमात्मा ही सबको आनन्द देने वाला है –**'यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति' (तै. २.७)। (क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (६)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

अब प्रश्न यह उठता है कि यह आसक्ति कैसे आती है और कहाँ से आती है? इस प्रश्न के उत्तर में कह सकते हैं कि आसक्ति किसी भी प्रकार से आती है, कहीं से भी आ सकती है और किसी भी व्यक्ति में आ सकती है। एक चिन्तक ने कहा है, "आसक्ति कभी भी आ सकती है, किसी में भी आ सकती है।" भोग्य पदार्थों के दर्शन और चिन्तन से आसक्ति का जन्म होता है और उसका परिणाम सर्वनाश होता है। गीता के दूसरे अध्याय के ६२-६३वें श्लोक में श्रीकृष्ण भगवान ने इस विषय को स्पष्ट समझाते हुए कहा है – "विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मोह पैदा होता है और मोह से स्मृतिभ्रम होता है। स्मृतिभ्रम से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से वह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।" इस प्रकार विषयों का चिन्तन आसक्ति का मूल है और सर्वनाश उसका परिणाम है। इस आसक्ति से किस प्रकार मुक्त होकर जलकमलवत् रह सकते हैं? इसके लिये क्या करना है?

आसक्ति से मुक्त होने के उपाय – सामान्य रूप से आसक्ति से मुक्ति प्राप्त करना कठिन है, पर जागरुक रहकर सतत प्रयत्न करने वाले के लिये उतना मुश्किल नहीं होता है। इससे मुक्त होने के उपाय इस प्रकार हैं –

१. अपेक्षा न करें – जब अपेक्षा होती है, तभी दुख होता है। अपेक्षा के अनुसार नहीं होने पर मनुष्य अत्यन्त दुखी हो जाता है। आसक्ति से मुक्त होने का मार्ग बताते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "हम दे रहे हैं उससे नहीं, वरन् जिसकी हम अपेक्षा रखते हैं, उससे फँस जाते हैं। हमारे प्रेम के बदले हमें दुख मिलता है। यह दुख हम प्रेम करते हैं उसके कारण नहीं मिलता है, वरन् उसके बदले प्रेम की अपेक्षा रखते हैं, उसके कारण मिलता है। जहाँ अपेक्षा नहीं, वहाँ दुख नहीं। इच्छा-अपेक्षा सभी दुखों का मूल है। इसलिये यदि नि:स्वार्थ भाव से कार्य किये जाएँ और कोई अपेक्षा ही न हो, तो दुख नहीं होगा।

२. अनासक्त होने की शक्ति विकसित करें – जिस प्रकार मनुष्यों में आसक्त होने की शक्ति है, उसी प्रकार उसमें अनासक्त होने की भी शक्ति है। परन्तु वह इसका विकास नहीं करता। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "मनुष्य अपनी सर्वशक्ति से किसी भी विषय से संयुक्त हो सकता है और आवश्यकता हो, तो उससे अलग भी हो सकता है। ऐसा व्यक्ति ही प्रकृति से अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकता है।" अर्थात् सबमें ओत-प्रोत होने के साथ, मुक्त होने की शक्ति भी अवश्य होती है। जिसे इस प्रकार अनासक्त होना आता है, वह आसक्ति का आनन्द ले सकता है और साथ-साथ उसके दुखों से भी मुक्त रह सकता है। उसे कोई भी व्यक्ति या वस्तु बाँध नहीं सकती है। चाहे कोई व्यक्ति या वस्तु हो, वह उनके संग का आनन्द ले सकता है और जब वे दोनों चले जाएँ, तो उसका किंचित् भी दुख उसे नहीं होता है।

३. निर्लिप्त रहें – निर्लिप्त रहने का अर्थ संसार को त्याग कर जंगल में जाना नहीं है। क्योंकि जंगल में जाने से भी मन में स्थित आसक्त होने की शक्ति समाप्त नहीं होती है। जंगल में आसक्ति के वस्तु या पात्र बदल जाते हैं, पर मूल में आसक्ति तो होती है। संसार में रहकर, अनासक्त रहना हो, तो अलिप्त होना सीखना पड़ेगा। जलकमलवत् रहना अर्थात् संसार के विषयों में लिपटे बिना धैर्यपूर्वक सब कार्य करना। प्रश्न उठता है कि संसार के बीच में रहकर निर्लिप्त कैसे रह सकते हैं? इसके लिये श्रीरामकृष्ण देव बड़े घर की सेविका का उदाहरण देते हैं। जैसे बड़े घर की सेविका सेठानी के बच्चे को 'मेरा हरि, मेरा हरि' कहती है, पर मन में तो समझती है कि 'यह मेरा हरि नहीं है, मेरा हरि तो झोपड़ी में है।' ऐसी भावना बनाए रखने से वह आसक्त नहीं होती है। इसी प्रकार, मनुष्य भी यदि संसार में रहे, पर मन में सोचे कि यह मेरा सच्चा घर नहीं है, मेरा सच्चा घर तो भगवान के पास है, इस भावना से यदि मनुष्य संसार में रहे, तो

वह संसार से निर्लिप्त रह सकता है। सचमुच मनुष्य कमल के समान निर्लिप्त होकर संसाररूपी पंक (कीचड़) में भी रह सकता है। केवल उसे यह दृष्टिकोण विकसित करना है। इसके लिये प्रारम्भ में जागरुकता से प्रयत्न करते रहना है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''तुम्हारे मन में संसार नहीं होना चाहिये, तुम भले संसार में रहो, उसमें कोई आपत्ति नहीं है। पानी में नाव हो, तो कोई आपत्ति नहीं, पर नाव में पानी भर जाएगा, तो नाव डूब जाएगी।'' वे एक दूसरा उदाहरण कछुए का देते हैं। वे कहते हैं, ''कछुई (मादा कछुआ) पानी में भले तैर रही हो, पर उसका चित्त तो किनारे पर ही होता है, जहाँ वह अंडे दिये रहती है।'' इसी प्रकार मनुष्य भले संसार में रहता हो, पर यदि उसका चित्त भगवान में लगा हो, तो संसार उससे चिपट नहीं सकता है।

४. परिस्थिति से स्वयं को अलग रखें – विषयासक्त मनुष्य अपना विवेक खो बैठता है। उसमें भी भावनाप्रधान लोगों को मन में धक्का लगे, तो उनका कोमल हृदय सहन नहीं कर पाता है। उनके जीवन से रस ही समाप्त हो जाता है। उस समय मन की समझ या चिन्तन कुछ काम नहीं आता है। उनका मन इस धक्के से सरलता से बाहर नहीं आता है। अधिकांश मनुष्य अपने मन के आगे हार जाते हैं। भगवान बुद्ध कहते हैं, ''सहस्त्र सैनिकों के सामने लड़ना सरल है, पर मन के साथ लड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि मन में हजारों जन्मों के संस्कार पड़े होते हैं। जब वे सिर उठाएँ, तब उनके सामने लड़ने की ताकत अच्छे-अच्छे लोगों में भी नहीं होती है।'' तो ऐसे समय क्या करें?

ऐसे समय अपने आपको परिस्थिति से अलग करना चाहिये। तटस्थतापूर्वक परिस्थिति का अवलोकन करना चाहिये। उदाहरणार्थ हम ट्रेन में बैठे हों और साथ के डिब्बे में आग लग जाए, तब हम क्या करेंगे? आग बुझाने का प्रयत्न करेंगे, फिर भी नहीं बुझी, तो उस डिब्बे से अपने डिब्बे को अलग कर लेंगे। जीवन में भी ऐसा ही करना है। ट्रेन के डिब्बे की तरह अपने आपको अलग कर लेना है। जैसे ही हम अपने आपको परिस्थिति से अलग करते हैं, उसी क्षण हमें परेशान करनेवाले तत्त्वों की आधी शक्ति कम हो जाती है। इसके बाद मन से विचार करने पर संकल्पपूर्वक आसक्ति के बन्धनों से शीघ्र मुक्त हो सकते हैं। **(क्रमशः)**

टिंकू अब स्वावलम्बी हो गया

श्याम कुमार पाढ़ी

अपने भैया के साथ घूमते हुए टिंकू श्रीरामकृष्ण आश्रम पहुँच गया। वहाँ महाराज लोगों की बात, उनलोगों का व्यवहार उसे अच्छा लगा। अब तो वह वहाँ बार-बार जाने लगा। वार्तालाप के समय उसे पता चला कि स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से उत्साहित युवकों की एक मण्डली है। वहाँ युवक पाठचक्र में आते हैं। टिंकू भी साप्ताहिक दिन पता कर पाठचक्र में चला गया। वहाँ अपने समवयस्क युवकों से मिलकर उसे बहुत अच्छा लगा। क्योंकि इसके पहले वह बड़े अवसाद में था। कभी अचानक टाईफाइड होने से वह कई माह बीमार रहा। शारीरिक कमजोरी से मनोरोग भी हो गया। इस प्रकार वह लाचार बनकर अपने दिन बिताने लगा। वह कभी स्वयं को परिवार, समाज का बोझ समझता था। एक दिन तो उसने अपना जीवन समाप्त करने का भी सोच लिया। परन्तु हिम्मत नहीं जुटा सका और अवसाद एवं घुटन का जीवन जीने के लिए लौट आया। घर में गुमसुम किसी किनारे आसमान की ओर ताकते, गालों पर लुढ़कते आँसुओं के साथ वह दिन गुजारता था ।

अब प्रति सप्ताह टिंकू पाठचक्र में आने लगा। स्वामीजी की बातें उसके मन में नवजीवन का संचार करने लगीं। उसने बी.ए. पास किया। आगे पढ़ने की इच्छा नहीं हुई, लेकिन अब जीवन के लिए क्या करें? कभी खेती करने, तो कभी ठेकेदारी करने की सोचता। यह भी उसके लिये उन्नति का ही लक्षण था कि वह अब कुछ करने की सोच रहा था। शिविर आदि में स्वच्छता के कार्य वह ठीक से करता। कभी बुक-स्टॉल में काम करता। जब कभी वह किसी को संकटग्रस्त एवं अस्पताल में भरती आदि सुनता, तो सबसे पहले वहाँ पहुँचकर सगे-सम्बन्धियों से भी अधिक सेवा करता। उसके मन में स्वामीजी की बातें गूँजती रहती, **''दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने से सिंह के समान बल आता है।''** कभी-कभी तो टिंकू ऐसे बड़े कार्य करता, जिसे देखकर लोग घबरा जाते। उसके उत्साह को देखकर घर के लोग प्रसन्न होते एवं उससे जीवन में कुछ कर पाने की आशा करने लगते। आगे चलकर उसी टिंकू ने आत्मनिर्भरता के कई मार्ग निकाले, अपना जीवन उन्नत किया और दूसरों को आत्मनिर्भर एवं अच्छा मनुष्य बनने के लिये प्रेरित करने लगा। ○○○

श्रीरामकृष्ण की विनोद लीला

अवधेश प्रधान

प्रो. हिन्दी विभाग,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

श्रीमाँ सारदा देवी ने श्रीरामकृष्ण देव के सदानन्दमय स्वभाव के बारे में कहा है, ''मैंने ठाकुर को कभी भी उदास नहीं देखा। वे सभी के साथ हमेशा आनन्द में रहते थे, चाहे पाँच वर्ष का बालक हो या कोई बूढ़ा आदमी। मैंने कभी ठाकुर को उदास नहीं देखा, बेटे। अहा ! वे कितने आनन्द के दिन थे।'' ....''कैसे सदानन्दमय पुरुष थे ! चौबीसों घंटे हँसी, कीर्तन, विविध प्रसंग, गाना आदि चलता ही रहता था।''[१] ...''दक्षिणेश्वर में मानो आनन्द का बाजार लगा रहता था।'' ''भावावस्था में उनके चेहरे पर मैंने सर्वदा मुस्कराहट देखी है। ...समाधि की सभी अवस्थाओं में उन्हें हमेशा हँसमुख देखा है।''[२]

स्वामी विज्ञानानन्द ने कहा था, ''वे साधारण मनुष्य की ही तरह दिखाई देते थे, पर उनके मुख पर अपूर्व हास्य था। ऐसा हास्य और कभी किसी का नहीं देखा। जब हँसते थे, तो उनके चेहरे से, आँखों से और यही क्यों, पूरे शरीर से मानो आनन्द की एक लहर खेल जाती और वह दिव्यानन्दमयी हँसी हृदय के समस्त दुख-कष्टों और शोक-तापों को सदा-सर्वदा के लिये मिटा देती।''[३]

अद्वैत की साधना और निर्विकल्प समाधि की सहज उपलब्धि के बावजूद वे कर्कश तर्क और शुष्क ज्ञान से दूर थे। भक्ति, प्रेम, रस, आनन्द ने उनके दिव्य भाव को दिव्य मानवीय रूप दिया था, इससे उनका मानवीय व्यक्तित्व दिव्य आकर्षण से परिपूर्ण हो गया था। 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' पढ़ते हुए हम देखते हैं कि वे अपने सम्पर्क में आनेवाले बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, त्यागी-गृहस्थ, शिक्षित-अशिक्षित सभी के साथ विनोद-लीला करते चलते हैं और उज्ज्वल आनन्द की हिलोरें उठ- उठकर उदासी, खिन्नता, दुख और अनमनेपन की धूल को धोकर बहा ले जाती हैं और समूचा परिवेश स्वच्छ, निर्मल, हलका और पवित्र हो जाता है।

कालक्रम से पहला प्रसंग १ जनवरी, १८८१ का है, जब केशवचन्द्र सेन श्रीरामकृष्ण देव से मिलने दक्षिणेश्वर में आये थे। श्रीरामकृष्ण ने केशवचन्द्र सेन से हँसते हुए कहा – ''केशव तुम मुझे चाहते हो, परन्तु तुम्हारे चेले लोग मुझे नहीं चाहते। तुम्हारे चेलों से कहा था, आओ, हम खंजन-मंजन करें, उसके बाद गोविन्द आ जायेंगे।'' फिर उन्होंने केशव बाबू के शिष्यों से कहा, ''वह देखो जी, तुम्हारे गोविन्द आ गए। मैं इतनी देर तक खंजन-मंजन कर रहा था, भला आयेंगे क्यों नहीं?'' सभी हँसने लगे।[४]

जलपान इत्यादि करते-करते रात के ग्यारह बज गए। श्रीरामकृष्ण ने केशव से रात में दक्षिणेश्वर में ही रुक जाने को कहा। केशव ने हँसते हुए कहा – काम-काज है, जाना होगा। इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा -''क्यों जी, तुम्हें क्या मछली की टोकरी की गन्ध न होने से नींद नहीं आएगी?'' उसके बाद उन्होंने यह कहानी सुनाई – ''एक मछुआरिन रात को एक मालिन के घर अतिथि बनी थी। उसे फूलवाले कमरे में सुलाया गया, पर उसे नींद नहीं आई। वह करवटें बदल रही थी, उसे देख मालिन ने आकर पूछा, ''क्यों री, सो क्यों नहीं रही हो?'' मछुआरिन बोली – क्या जानूँ बहन, शायद फूलों की गंध से नींद नहीं आ रही है। क्या तुम जरा मछली की टोकरी मँगा सकती हो? तब मछुआरिन मछली की टोकरी पर जल छिड़ककर उसकी गंध सूँघती हुई सो गई !'' सुनकर सभी हँसने लगे।[५]

केशवचन्द्र सेन श्रीरामकृष्ण से केवल दो वर्ष छोटे थे, लगभग समवयस्क थे। लेकिन नरेन्द्र आदि बालक-भक्त पचीस-छब्बीस वर्ष छोटे थे। श्रीरामकृष्ण उनसे भी विनोद करते थे और प्राय: हँसते-हँसते नीति-धर्म की शिक्षा देते थे। मास्टर महाशय ने ५ मार्च १८८२ का एक प्रसंग लिखा है। ठाकुर नरेन (स्वामी विवेकानन्द) से पूछते हैं – तेरी कोई निन्दा करे, तो तू क्या समझेगा? नरेन ने कहा – ''मैं तो समझूँगा कि कुत्ते भौंकते हैं।''

श्रीरामकृष्ण (सहास्य) – अरे नहीं, यहाँ तक नहीं।

(सबका हास्य) सर्वभूतों में परमात्मा का ही वास है। पर मेल-मिलाप करना हो, तो भले लोगों से ही करना चाहिये। बुरे लोगों से अलग ही रहना चाहिये। बाघ में भी परमात्मा का वास है, इसलिये क्या बाघ को भी गले लगाना चाहिये? (लोग हँस पड़े)। यदि कहा कि बाघ भी तो नारायण है, इसलिये क्यों भागें? इसका उत्तर यह है कि जो लोग कहते हैं कि भाग चलो, वे भी तो नारायण हैं, उनकी बात क्यों न मानो?[६]

फिर श्रीरामकृष्ण ने महावत नारायण की प्रसिद्ध कहानी सुनाई। गुरु ने कहा – सभी प्राणियों में नारायण का वास है। सामने से हाथी आता देखकर शिष्य ने हाथी को नारायणभाव से नमस्कार किया और उसकी स्तुति करने लगा। महावत ने चिल्लाकर आवाज दी – भागो, भागो, लेकिन शिष्य स्तुति करता रहा। हाथी ने उसे सूँड़ से लपेट कर एक ओर फेंक दिया। शिष्य बुरी तरह घायल हो गया। उसे उठाकर आश्रम में लाया गया और उसकी दवा की गई। गुरु ने सब सुना, तो उसे समझाया – बेटा, हाथी नारायण आ रहे थे, ठीक है, पर महावत नारायण ने तो तुम्हें मना किया था। यदि सभी नारायण हैं, तो उस महावत की बात पर विश्वास क्यों नहीं किया? महावत नारायण की भी बात मान लेनी चाहिए थी। (सब हँस पड़े।) [७]

६ मार्च, १८८२ को जब मास्टर महाशय (महेन्द्रनाथ गुप्त) श्रीरामकृष्ण देव का चौथी बार दर्शन करने पहुँचे, तो उन्हें कमरे में प्रवेश करते देख श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा – "यह देखो, फिर आया।" सब हँसने लगे। श्रीरामकृष्ण वहाँ पहले से उपस्थित नरेन्द्र आदि भक्तों से कहने लगे – "देखो, एक मोर को किसी ने चार बजे अफीम खिला दी। दूसरे दिन से वह अफीमची मोर ठीक चार बजे आ जाता था ! यह भी समय पर आया है !" सब हँसने लगे।[८]

मास्टर महाशय ने श्रीरामकृष्ण के विनोदी स्वभाव को विशेष रूप से देखा। "इधर श्रीरामकृष्ण लड़कों से हँसी-मजाक करने लगे। मालूम होता था कि वे सब मानो एक ही उम्र के हैं। हँसी की लहरें उठने लगीं। मानो आनन्द की हाट लगी हो।" मास्टर मन ही मन सोचने लगे, "क्या ये वही मनुष्य हैं, जो आज प्राकृत मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं !" उच्च आध्यात्मिक अवस्था वाले महापुरुष या अवतार को साधारण मनुष्यों जैसे बर्ताव करते देखकर आश्चर्य और संदेह का होना स्वाभाविक है। हनुमानजी का प्रसंग आते ही श्रीरामकृष्ण देव समाधिस्थ हो गए। देह निश्चल, नेत्र स्थिर। मास्टर महाशय सोचने लगे, "क्या ये ही महापुरुष लड़कों के साथ विनोद कर रहे थे। तब तो लगता था, मानो ये पाँच वर्ष के बालक हैं।"[९]

उसी दिन शाम को जब नरेन्द्र और मास्टर महाशय को छोड़कर सभी भक्त अपने-अपने घर चले गए, हंस-तालाब के दक्षिण ओर वाली सीढ़ी के चबूतरे पर खड़े श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से कहा, "देख, थोड़ा और अधिक आया-जाया करना, तूने अभी आना शुरू किया है न? पहली जान-पहचान के बाद सभी लोग कुछ अधिक आया करते हैं, जैसे नया पति !" नरेन्द्र और मास्टर दोनों हँसने लगे।[१०]

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उनसे १६ वर्ष बड़े थे। संस्कृत के जितने बड़े पंडित, उतने ही दयालु और परोपकारी थे। समाज-सुधार और शिक्षा-प्रसार के अग्रणी थे। ५ अगस्त, १८८२ को श्रीरामकृष्ण मास्टर महाशय के साथ उनसे मिलने उनके घर गए। श्रीरामकृष्ण ने उनसे जो बातचीत की उसमें हास्य-विनोद और वाक्पटुता का एक और ही स्तर है। श्रीरामकृष्ण ने कहा – "आज सागर से आ मिला। इतने दिन खाई, सोता और अधिक से अधिक हुआ, तो नदी देखी, पर अब सागर देख रहा हूँ।" सब हँसने लगे। विद्यासागर ने छूटते ही सेर के मुकाबले में सवा सेर रखा – "तो थोड़ा खारा पानी लेते जाइए ! (हास्य) श्रीरामकृष्ण ने बिगड़ते रंग पर सोने का पानी चढ़ा दिया, "नहीं जी, खारा पानी क्यों? तुम तो अविद्या के सागर नहीं, विद्या के सागर हो ! (सब हँसे) तुम क्षीर-समुद्र हो ! (सब हँसे)।"[११]

(क्रमशः)

सन्दर्भ ग्रन्थ –

१. (श्रीमाँ सारदा देवी की अमृतवाणी, पृष्ठ-९३) **२.** (वही, पृ. ९४) **३.** (स्वामी विज्ञानानन्द, जीवन और संदेश, पृ. ३७) **४.** (वचनामृत, पृ० ११७९) **५.** (वही, पृ. ११८२) **६.** वही, पृ० १२ **७.** वही, पृ० १२ **८.** (वही, पृ. १९) **९.** (वही, पृ. २०) **१०.** (वही, पृ० २१) **११.** (वही, पृ. ३९)

हिन्दूधर्म की श्रेष्ठता

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

हम लोगों ने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता के बारे में श्रद्धापूर्वक बहुत कुछ सुना है। किन्तु कितने हिन्दूओं को अपने धर्म की श्रेष्ठता के बारे में सचमुच पता है? यदि हिन्दू धर्म के बारे में कही गई अच्छी बातें सत्य हैं, तो यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि पाश्चात्य धर्म के आक्रमण से उसकी पराजय नहीं होगी। यदि हम बिना सोचे-समझे प्रसन्नता से इस प्रकार की भविष्यवाणी करते हैं, तो यह हमारे लिए निरर्थक प्रशंसा मात्र है। पाश्चात्यवासी अपनी कुशाग्र बुद्धि से हमारे धर्म और समाज व्यवस्था के अन्तर को जान नहीं सकते, क्योंकि हमारी समाज-व्यवस्था धर्म के उपनियमों से आबद्ध है। किन्तु हमारी समाज-व्यवस्था का पूर्ण लोप भी हो जाए, तो भी हमारे धर्म के महत्त्वपूर्ण विचार अक्षुण्ण रहेंगे। ये विचार पाश्चात्य में भी उतने ही लागू होते हैं, जितने कि प्राच्य में। अन्य धर्ममतों में हिन्दू धर्म ही एकमात्र धर्म है, जिसका एक भाग निरपेक्ष सार्वजनिक सत्यों के प्रति समर्पित है और कदाचित् यही इसकी श्रेष्ठता है। उसे अपने इन निरपेक्ष सिद्धान्तों और अन्य आकस्मिक अभिव्यक्तियों के बीच कोई भय नहीं, जिसका भय स्वमत में श्रद्धा रखने वाले एक सतही व्यक्ति को होता है।

यद्यपि हिन्दूधर्म में विशाल पुराण साहित्य है, तथापि अन्य धर्मों की अपेक्षा हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व पौराणिक विचारों पर बहुत ही कम आधारित हैं। यदि पाश्चात्य व्यक्ति अपने श्रद्धा-विश्वास की ऐतिहासिकता का बहिष्कार करता है, तो वह निराधार हो जाएगा। हिन्दूधर्म में ऐसा नहीं है। यदि सत्य की पृष्ठभूमि में धार्मिक अध्यवसाय नहीं है, तो हिन्दू धर्म उसका कभी भी अन्वेषण नहीं करेगा। यदि कोई व्यक्ति हमसे अधिक गहन और दूरदृष्टि रखता है, तो हमारे द्वारा कभी भी उसको कष्ट पहुँचने की सम्भावना नहीं होगी। जिओर्दानो ब्रूनो को कभी भी जलाया नहीं जाता, गेलेलियो को कभी भी सताया नहीं जाता, यदि वे भारतीय होते। ज्ञान के लिए किए गए प्रत्येक सम्यक् प्रयास को सनातन धर्म ने स्वीकृति दी है। सत्य किसी भी रूप में आए, वह उससे बिल्कुल भी ईर्ष्या अथवा सन्देह नहीं करता। कदाचित् यही हिन्दू धर्म की यथार्थ श्रेष्ठता है।

हमारा धर्म ऐसे लोगों का है, जिन्होंने कभी भी बर्बरता नहीं अपनाई और शिक्षा का कभी विरोध नहीं किया। सत्य के विविध स्वरूपों का हम भेद नहीं करते। सत्य सत्य ही है। जो लोग हमें मूर्तिपूजक कहते हैं और अपनी पुराण-दन्त कथाओं में बँधे हुए हैं, उनकी तुलना में हम स्वयं को इस प्रकार बँधा हुआ नहीं मानते। अपनी श्रद्धा के प्रति हमें दृढ़ होना चाहिए। सभी प्रकार के ज्ञान पवित्र हैं। ज्ञान की गहराइयों से जो विश्वास हमें प्राप्त हुआ है, उससे हम यह नहीं कह सकते कि अमुक ज्ञान अधिक बन्धन में डालता है और अमुक कम। गणितशास्त्र भी ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। वैज्ञानिक भी एक प्रकार से ऋषि हैं।

हमारे पाश्चात्य मित्र धर्म को जिस एक औपचारिकता के रूप में लेते हैं, उस पर हम केवल हँस सकते हैं। पाश्चात्य लोग ईश्वर को इसलिए मानते हैं, क्योंकि एक प्रमुख वैज्ञानिक ने ऐसा कहा है। यह बचपना मात्र है। क्या वे अपेक्षा करेंगे कि दूसरे लोग ऐसे धर्म को स्वीकार करें, जिसके बारे में वे स्वयं न्याय नहीं कर पा रहे हैं ? हिन्दुओं के लिए धर्म अनुभूति है अथवा कुछ नहीं। यदि विज्ञान भी अनुभूति है, तो वह धर्म और विज्ञान दोनों में से किसी को भी अस्वीकार करने की नहीं सोचेगा, क्योंकि वह दोनों को सत्य समझता है। क्या ईश्वर उसके अधीन है? क्या संसार उसकी अपरिपक्व ईश्वर-विषयक धारणा पर निर्भर करता है? यदि वह एक न्यायाधीश होता तो, उसे अपेक्षाकृत अधिक विनम्रता और धैर्य का अभ्यास करना पड़ता।

हिन्दूधर्म व्यक्ति को केवल पढ़ने अथवा विश्वास तक सीमित होने के लिए नहीं कहता है। कुछ बोलने के पहले व्यक्ति को अनुभूति होनी आवश्यक है। यहाँ खोटा सिक्का नहीं चलेगा। सिक्के की ध्वनि से हम असली और नकली सिक्के के बारे में जानते हैं। हम जान सकते हैं कि कौन अधिकारपूर्वक बोल रहा है और कौन आडम्बरपूर्वक बोल रहा है। हमारी श्रद्धा अनुभूति, साक्षात्कार और व्यक्तिगत जीवन के चरितार्थ पर आधारित है। इसके बिना अपने मुख मियाँ मिट्ठू बनने वालों का हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं है। उनका आना-जाना कोई महत्त्व नहीं रखता। यदि कल हमारी धार्मिक

व्यवस्था का सम्पूर्ण ढाँचा नष्ट हो जाता है, तो भी हम उसे न केवल पुन: खड़ा कर सकेंगे, अपितु अन्त:करण की इच्छा मात्र से हम ऐसा करने को बाध्य होंगे।

यदि कुछ लोग इसलिए मिथ्या आँसू बहा रहे हैं कि हमारे धर्म का विनाश होने वाला है, तो वे यह जान लें कि उनके ही अन्धविश्वास विनाश के कगार पर हैं, न कि हमारे। हिन्दूधर्म इसलिए समाप्त नहीं हो जाएगा कि उसके अनुयाइयों ने सुबह चाय पीना शुरु कर दी है। जाति, व्यवसाय, रहन-सहन, बाह्य आचार आदि का यदि लोप भी हो जाए, तो भी हिन्दूधर्म हमेशा की तरह अक्षुण्ण रहेगा। ईसाई देशों में हिन्दूधर्म के विचार जो द्रुतगति से प्रसिद्ध हो रहे हैं, क्या इससे यह आशा नहीं की जा सकती है कि हमारा हिन्दूधर्म सर्वथा सुरक्षित है? हमारा धर्म किसी भी उच्च प्रकार की सभ्यता के लिए सर्वथा अनुकूल है। किन्तु अपनी जन्मभूमि से इसका कभी भी नाश नहीं होगा। यदि इसे सिद्ध करने के लिए हमें प्रमाण की आवश्यकता होती है, तो यह अविवेक और अपरिपक्व-उन्माद होगा, जिसका हम उल्लेख करते आ रहे हैं। क्या हम यह जानते नहीं है कि धर्मपन्थों के लोप हो जाने से राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं ? क्या यह न जानकर हम मूर्ख बने रहेंगे कि प्राचीन मिस्र और बेबिलोन की सभ्यता का क्या इतिहास है? वे अपनी पूर्वजों की विरासत से पृथक् हो गए और उनका ऐसा नाश हो गया कि पुनर्जीवन की कोई सम्भावना नहीं थी। भारत ऐसा कभी नहीं करेगा। वह पूरे विश्व में जाकर देखे कि उसके अखण्ड भण्डार के सामने अन्य अविकसित मतों की विचारधारा कितनी अपरिपक्व है। वह सभी मतों का गुरु और उपदेशक बने और जाने कि जो लोग उसका विरोध करते हैं, उनकी अल्पता और छिछलेपन के सामने उसके अपने देश के विचारक कितने महान हैं। अपनी धरोहर पर उसकी श्रद्धा और विश्वास दिनोंदिन बढ़े। चापलूस, मिथ्या-समर्थक और अपने अल्पमति सद्भावसम्पन्न लोग जो दूसरों के मिथ्या शब्दों से प्रसन्न हो जाते हैं – इनकी वह शान्त सहास्यपूर्वक उपेक्षा कर दे। शान्त और सन्तोषपूर्वक अपनी दृष्टि उस निकट भविष्य पर बनाए रखे, जब परिस्थितियाँ विपरीत होंगी और भारत पुन: शीर्ष स्थान पर होगा।

वह समय आ रहा है और हम उसके निकट हैं। यदि हम सन्देह करते हैं, तो यह भारतमाता के प्रति निष्ठाहीनता होगी। यदि हम यह नहीं देख सकते हैं, तो भारतमाता के वैभवपूर्ण अतीत के हम अयोग्य द्रष्टा होंगे। विश्व के सम्प्रदाय ही नहीं, अपित यूरोप के विश्वविद्यालय भी भारत के उन महान विचारकों के प्रति श्रद्धांजलि देंगे, जिन्होंने तरुतल में रहकर, वल्कल अथवा कौपीन धारण कर ऐसे व्यापक और सूक्ष्म सत्यों का प्रतिपादन किया, जिसके बारे में भोगपरायण यूरोप स्वप्न में भी सोच नहीं सकता। ○○○

पुस्तक समीक्षा

श्रीमाँ सारदा-चरितावली

रचयिता – स्वामी रामतत्त्वानन्द

प्रकाशक – डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

सचिव, विवेकानन्द विद्यापीठ, रामकृष्ण परमहंस नगर, कोटा, रायपुर – ४९२ ००१ (छत्तीसगढ़)

मूल्य – १५०/-, पृष्ठ – १६+२६३

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव की चार भागों में 'श्रीरामकृष्णचरितमानस' के प्रणेता, रामकृष्ण संघ के स्वामी रामतत्त्वानन्द जी महाराज से विवेक ज्योति के पाठक पूर्व परिचित हैं। जिस प्रकार महाराजजी ने दोहे, चौपाई और छन्द आदि में भगवान श्रीरामकृष्ण की लीला को लोकमानस में प्रसिद्ध कर दिया, वैसे ही जग-जननी श्रीमाँ सारदा की लीलाओं का प्रणयन उन्होंने 'श्रीमाँ सारदा-चरितावली' नामक ग्रन्थ के रूप में किया है। भक्तगण बड़े प्रेम से संगीतमय ढंग से इसे गाकर भक्ति की सरसता का आनन्द ले सकते हैं और शक्ति-भक्तिमयी श्रीमाँ की सत्ता से जुड़ सकते हैं। सन्त कवि लिखते हैं –

सारदा जगजननी गाथा। आओ गायें मिलजुल साथा।।
सारू प्रात नित करहीं प्रणामा। रघुवीर खुदीवर पूरण कामा।।
हाथ बटावहि पुनी गृह काजा। सकल भाँति सेवहि हिय राजा।।
पति कारज अरु पति पद सेवा। करहि समझ हिय निज प्रिय देवा।।

रामकृष्ण करहहिं शयन पद चापहिं माँ सारु।
मन निरखत छवि मधुर अति धन धन भाग हमार।।
जग जननी जग सेवहहि मन मनुवा धरु धीर।
तज संसय विश्वास कर, काटेंगी भव पीर।।

ऐसी सरस भक्तिमय, मातृसमर्पित और साधनापरक दोहा-चौपाइयों से परिपूर्ण यह श्रीमाँ सारदा-चरितावली है। इसमें श्रीमाँ सारदा-प्रश्नावली और श्रीमाँ की अर्थ सहित आरती है। पुस्तक के प्रारम्भ में बहुत सुन्दर रंगीन श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी के चित्र हैं, जिससे लीलागाथा और सजीव हो जाती है। लेखक, प्रकाशक और इसमें सहयोगी सभी धन्यवादार्ह हैं। ○

स्वच्छ भारत अभियान

रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटुर ने दो स्वच्छता कार्यक्रम आयोजित किये, जिसमें ८२ छात्रों ने एक मंदिर और कुछ सार्वजनिक स्थानों की सफाई की।

रामकृष्ण मिशन, मेंगलोर ने ३० अक्टूबर से २७ नवम्बर, २०१६ के मध्य आए पाँच रविवार दिनों में स्वच्छता के तीसरे चरण में ५९ स्वच्छता कार्यक्रम मेंगलोर और उसके बाहर आयोजित किये। इसमें लगभग ५००० स्वयंसेवकों ने भाग लिया।

कोयम्बटूर आश्रम ने २५ से २७ नवम्बर, २०१६ तक त्रिदिवसीय आवासीय युवा सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें ११५९ युवकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, दिल्ली ने ३ नवम्बर से ९ नवम्बर तक दिल्ली और ग्वालियर के प्राचार्यों, शिक्षकों, छात्रों और अध्यापकों के लिये ९ सेमिनारों का आयोजन किया, जिसमें कुल ९१७ लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, पोन्नमपेट में नव निर्मित चिकित्सक-आवास का उद्घाटन हुआ । २१ नवम्बर, २०१६ को 'देश की सम्प्रभुता को अक्षुण्ण रखने में सैनिकों की भूमिका' पर एक सेमिनार आयोजित हुआ, जिसमें ३८० लोग उपस्थित थे।

चेन्नई सारदा विद्यालय के माध्यमिक विद्यालय को तमिलनाडू सरकार द्वारा २८ जून, २०१६ को २०१५-२०१६ वर्ष के 'सर्वश्रेष्ठ विद्यालय' से पुरस्कृत किया गया।

मोडेल हायर सेकेन्ड्री स्कूल और **ग्रल्स हायर सेकेन्ड्री स्कूल, चेन्नई सारदा विद्यालय** के दो शिक्षकों को ५ सितम्बर, २०१६ शिक्षक दिवस पर 'सर्वोत्कृष्ट शिक्षक' से पुरस्कृत किया गया।

रामकृष्ण मिशन मैसूर, ने २८ अक्टूबर, २०१६ को छात्रों और अध्यापकों के लिये सम्मेलन किया, जिसमें ५०० लोगों ने भाग लिया और २६ नवम्बर, २०१६ को चामराजनगर जिला के टेनकालामोले ग्रामीण अंचल में रामकृष्ण सेवामंदिर का उद्घाटन किया।

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी ने २८ अक्तूबर, २०१६ को लिफ्ट सेवा प्रारम्भ की।

रामकृष्ण मिशन चंडीपुर द्वारा २८ अक्तूबर, २०१६ को हुई सार्वजनिक सभा में १५० लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, देहरादून, द्वारा १० नवम्बर से १३ नवम्बर, २०१६ को आयोजित प्रतियोगिता में ३५ विद्यालयों के ८५० छात्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, जयपुर के २७ नवम्बर को हुए भक्त सम्मेलन में ७५ भक्त उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, कड़प्पा द्वारा १८ नवम्बर को आयोजित हुए युवा सम्मेलन में १६ कॉलेजों के १००० युवक उपस्थित थे।

रामकृष्ण मिशन, कानपुर में ६ नवम्बर को चिकित्सक सेमिनार हुआ, जिसमें ५० चिकित्सकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची द्वारा विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुए

१३ नवम्बर, २०१६ रविवार को स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज की १५०वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में भक्त सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें १७५ भक्तों ने भाग लिया। शिविर श्रीरामकृष्ण अष्टोत्तरशतनाम और सन्तों द्वारा वैदिक पाठ से शुभारम्भ हुआ। रंजित पात्रा ने बड़ा मधुर भजन प्रस्तुत किया। आश्रम के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी, स्वामी अमृतलोकानन्द जी, रामकृष्ण मिशन रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी आदि ने भक्तों को सम्बोधित किया।

१४ नवम्बर, २०१६, सोमवार को आर.टी.सी कॉलेज में युवा-शिविर का आयोजन था, जिसमें ६०० बच्चों ने भाग लिया। स्वामी भवेशानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, ब्रह्मचारी राजू और राँची के सांसद श्री रामटहल चौधरीजी ने युवाओं को सम्बोधित किया।

१५ नवम्बर, २०१६ को नारी सशक्तिकरण शिविर में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों से कुल ३१४ महिलाओं ने भाग लिया। OOO